॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कल्याण

वर्ष ६०] * * * [संख्या १०

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,६५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१२, अक्टूबर १९८८

चित्र-सूची

इस अंकका साधारण मूल्य भारतमें १.५० विदेशमें १५ पेंस

जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

'कल्याण'का वार्षिक मूल्य भारतमें ३०.०० रु० विदेशमें ८०.०० रु० (५ पौंड)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका

गोविन्द-भवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

(भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित)
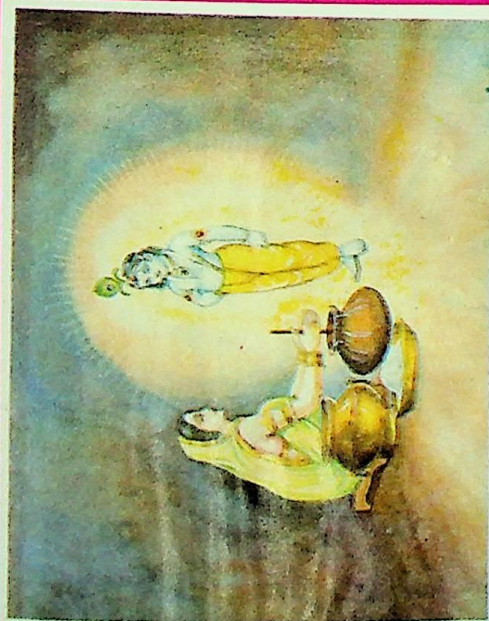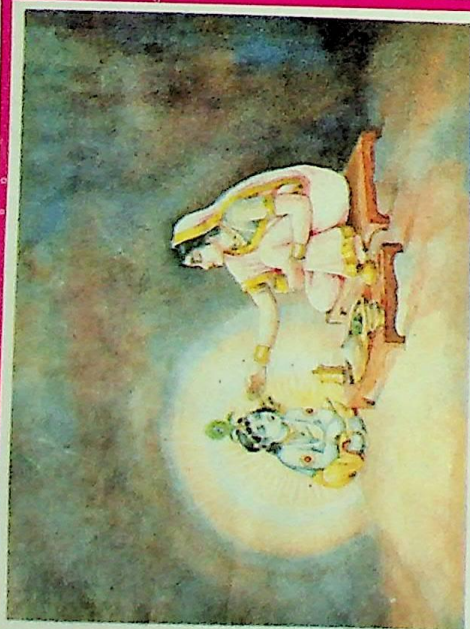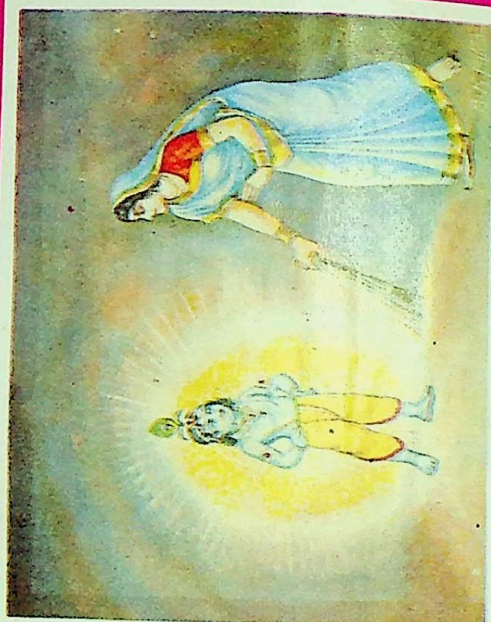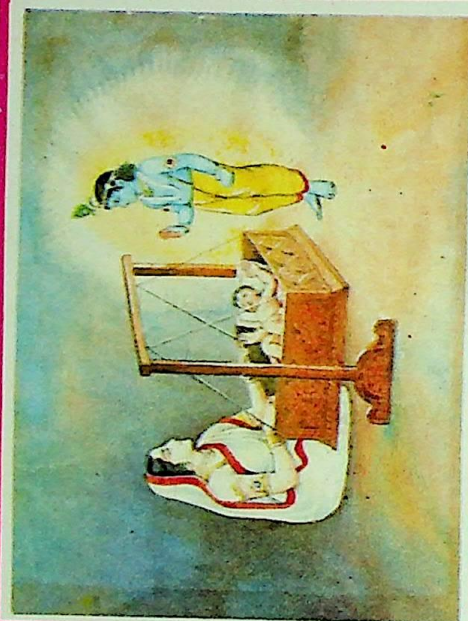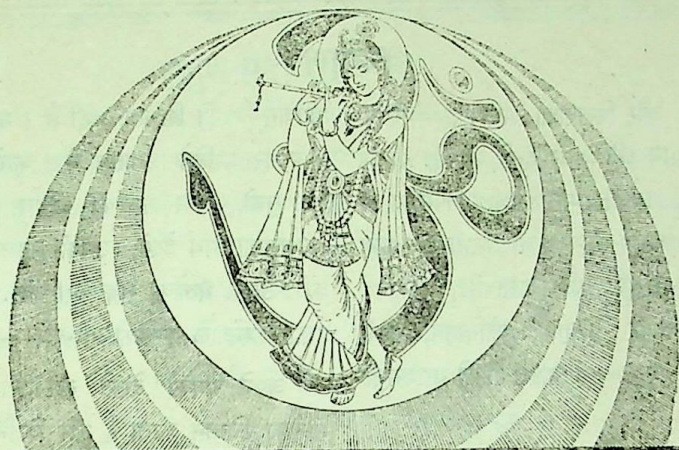
बृजाङ्गनाओं की सब कार्यों में भगवद्दृष्टि

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥

वर्ष ६० } गोरखपुर, सौर कार्तिक, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१२, अक्टूबर १९८६ ई० { संख्या १० पूर्ण संख्या ७१९

व्रजाङ्गनाओंकी भगवद्दृष्टि

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥

(श्रीमद्भा० १० । ४४ । १५)

'सखी ! व्रजकी गोपियाँ धन्य हैं । वे निरन्तर श्रीकृष्णमें ही चित्त लगे रहनेके कारण प्रेमभरे हृदयसे आँसुओंके कारण गद्गद कण्ठसे इन्हींकी लीलाओंका गान करती रहती हैं । वे दूध दुहते, दही मथते, धान कूटते, घर लीपते, बालकोंको झूला झुलाते, रोते हुए बालकोंको चुप कराते उन्हें नहलाते-धुलाते, घरोंको झाड़ते-बुहारते—कहाँतक कहें, सारे काम-काज करते समय श्रीकृष्णके गुणोंके गानमें ही मस्त रहती हैं ।'

बृजाङ·गनाओं की सब कार्यों में भगवत्दृष्टि

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥

वर्ष ६० } गोरखपुर, सौर कार्तिक, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१२, अक्टूबर १९८६ ई० { संख्या १० पूर्ण संख्या ७१९

व्रजाङ्गनाओंकी भगवद्दृष्टि

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥

(श्रीमद्भा० १० । ४४ । १५)

'सखी ! व्रजकी गोपियाँ धन्य हैं । वे निरन्तर श्रीकृष्णमें ही चित लगे रहनेके कारण प्रेमभरे हृदयसे आँसुओंके कारण गद्गद कण्ठसे इन्हींकी लीलाओंका गान करती रहती हैं । वे दूध दुहते, दही मथते, धान कूटते, घर लीपते, बालकोंको झूला झुलाते, रोते हुए बालकोंको चुप कराते उन्हें नहलाते-धुलाते, घरोंको झाड़ते-बुहारते—कहाँतक कहें, सारे काम-काज करते समय श्रीकृष्णके गुणोंके गानमें ही मस्त रहती हैं ।'

कल्याण

तुम्हारे पतन और विनाशका कारण है—विषय-चिन्तन तथा उत्थान और अमरपदकी प्राप्तिका कारण है—भगवच्चिन्तन। जबतक मन केवल विषयोंका ही स्मरण करता है, तबतक पाप-तापसे कभी छुटकारा नहीं मिल सकता। तुम यदि वास्तवमें पाप-तापसे छूटकर अपने जीवनको पुण्यमय, शान्तिमय, ऊँची स्थितिके भगवद्भावसे युक्त बनाना चाहते हो तो भगवान्‌का स्मरण करो।

याद रखो—जो मन भगवान्‌के स्मरणसे भरा है, उससे किसी भी कर्मके लिये जो प्रेरणा होती है वह विशुद्ध होती है और उसके अनुसार होनेवाला काम चाहे देखनेमें बहुत ऊँचा न भी प्रतीत हो तो भी वह होता है परम पवित्र और भगवान्‌की पूजा-स्वरूप! युद्ध-जैसा कर्म भी भगवत्प्राप्तिमें हेतु हो जाता है, यदि वह भगवान्‌के स्मरणसे युक्त हो। इसीसे तो भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है—'तुम सदा-सर्वदा मेरा स्मरण करते हुए युद्ध करो।'

भगवान्‌का स्मरण होते-होते जब भगवान्‌में ऐसा आकर्षण हो जायगा, जैसा विषयोंमें विषयी पुरुषोंका और कामिनियोंमें कामियोंका होता है, तब स्मरण अपने-आप ही होगा और तभी उस स्मरणमें आनन्दका अनुभव होगा। जबतक वैसा नहीं होता तबतक भगवान्‌के गुण, प्रभाव, लीला, नाम आदिको सुन-सुनकर उनमें मन लगाते रहो।

याद रखो—अभी तुम्हारी चित्तवृत्ति व्यभिचारिणी हो रही है; क्योंकि उसने भोगोंको ही आनन्द देनेवाला मान रखा है और रात-दिन वह उन्हींके साथ रमण कर रही है। भगवान्‌को छोड़कर जो भोगोंके प्रति आकर्षण है, यही तो मनका व्यभिचार है। इसीसे तो वह भगवान्‌के प्रति खिंचता नहीं है। मन भगवान्‌की ओर जाय, इसके लिये लगातार चेष्टा करते रहो। भगवान्‌के गुण सुनो, उनके नामोंका कीर्तन करो, सब कामोंमें भगवान्‌का हाथ देखो, उनकी मङ्गलमयी मूर्तिका ध्यान करो, उनके भक्तोंका सङ्ग करो और उनके माहात्म्यको प्रकट करनेवाले ग्रन्थोंको बार-बार—बार-बार पढ़ो।

अपने मनको देखते रहो कि वह कितनी देर भोगोंका चिन्तन करता है और कितनी देर भगवान्‌का? सावधान! मन बड़ा धोखा देगा। तुम समझोगे कि हमने उसे भगवान्‌के चिन्तनमें लगा रखा है; किंतु वह छिपकर ऐसा भागेगा और इस प्रकार भोगोंमें रम जायगा कि तुम्हें पता भी नहीं लगेगा। बार-बार देखते रहो। जितना ही अधिक मनकी ओर देखोगे, उतना ही वह शीघ्र वशमें होगा। ज्यों-ज्यों वह भागे त्यों-ही-त्यों उसे खींच-खींचकर भगवान्‌में लगाओ। उसके सामने भगवान्‌के सौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्य, आनन्द, शान्ति और कल्याणमय मङ्गल स्वरूपको बार-बार रखो। बार-बार उसे लुभानेकी चेष्टा करो—भगवान्‌के मनोहर रूपसे। सचमुच विषय तो भयंकर हैं, ऊपरसे ही सुन्दर लगते हैं। अज्ञान शत्रुने उन्हें विष मिले हुए लड्डूकी तरह सुन्दर और स्वादिष्ट बना रखा है, परंतु भगवान् तो नित्य सुन्दर और नित्य मधुर हैं। मन एक बार उनकी झाँकी कर लेगा, उनकी सौन्दर्यसुधाका स्वाद चख लेगा तो फिर वहाँसे सहजमें हटेगा नहीं। जिस दिन भगवान् प्रेमपात्र बन जायँगे तुम्हारे मन प्रेमीके, उस दिन सब कुछ आप ही ठीक हो जायगा। चेष्टा करो और भगवान्‌की कृपापर विश्वास करके अपनेको बार-बार उनके स्वरूप-समुद्रमें डुबो देनेका प्रयत्न करो। भगवत्कृपासे तुम सफल होओगे।

—'शिव'

सद्गुण-सदाचार—३

(ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

धन कमानेकी लालसा आत्माका अधःपतन करनेवाली है, इसी प्रकार स्त्रीसङ्गकी इच्छा उससे भी बढ़कर आत्माका पतन करती है।

पर-स्त्री-गमनकी तो बात ही क्या है,-वह तो अत्यन्त ही निन्दनीय और घोर नरकमें ले जानेवाला कर्म है; परंतु अपनी विवाहिता स्त्रीका सहवास भी शास्त्रविपरीत हो तो कम हानिकर नहीं है।

जब साधन करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषकी इन्द्रियाँ भी बलात्कारसे मनको विषयोंमें लगा देती हैं, तब फिर साधनरहित विषयासक्त पामर मूर्खोंका तो पतन होना कौन बड़ी बात है?

जैसे मूर्ख रोगी स्वादके वश कुपथ्य करके मर जाता है, वैसे ही कामी पुरुष स्त्रीका अनुचित सेवन करके अपना नाश कर डालता है।

विलासिताकी बुद्धिसे स्त्रीका सेवन करनेसे कामोद्दीपन होता है और कामका वेग बढ़नेसे बुद्धिका नाश हो जाता है। कामसे मोहित हुआ नष्टबुद्धि पुरुष चाहे जैसा विपरीत आचरण कर बैठता है, जिससे उसका सर्वथा अधःपतन हो जाता है।

स्त्रीके सेवनसे बल, वीर्य, बुद्धि, तेज, उत्साह, स्मृति और सद्गुणोंका नाश हो जाता है; एवं शरीरमें अनेक प्रकारके रोगोंकी वृद्धि होकर मनुष्य मृत्युके समीप पहुँच जाता है तथा इस लोकके सुख, कीर्ति और धर्मको खोकर नरकमें गिर पड़ता है। यही आत्माका पतन है।

कर्तव्यको भूलकर भोग, प्रमाद, आलस्य और सांसारिक स्वार्थ-सिद्धिमें मोहित होकर तल्लीन हो जाना ही निद्रा है।

चराचर भूत-प्राणी ईश्वरका अंश होनेके कारण ईश्वरका स्वरूप ही है। इस प्रकार समझकर उनके हितमें रत होकर उनकी सेवा करना और सर्वव्यापी विज्ञानानन्दघन परमात्माके तत्त्वको जानकर उन्हें कभी नहीं भूलना, यही जागना है।

कुसङ्गमें बुद्धि बिगड़ जाती है और जगत्में प्रायः कुसङ्ग ही अधिक होता है।

आलसी, भोगी, प्रमादी, दुराचारी, अहंकारी और नास्तिक मनुष्योंका सङ्ग ही कुसङ्ग है।

श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणादि शास्त्रोंमें जो सर्वोत्तम प्रतीत हों उन्हींके आचरणमें अपना समय लगाना चाहिये।

स्त्री-पुरुषोंका सम्बन्ध जहाँतक कम हो, उतना ही हितकर है।

ईश्वर-भक्ति, योग्यता और शक्तिके अनुसार सेवा करना, काम-क्रोध-लोभ-मोहादि दुर्गुणोंका त्याग, लज्जा, शील, समता, संतोष, दया, सरलता, शान्ति, कोमलता, निर्भयता आदि सद्गुणोंका सेवन, चोरी, जारी, झूठ, कपट, हिंसा आदि दुराचारों एवं मादक वस्तुओंका तथा परनिन्दा आदि दुर्व्यसनोंका त्याग करना मनुष्यमात्रका कर्तव्य है।

मानवका कर्तव्य ही पुण्य या सुकृत है और अकर्तव्य ही पाप या दुष्कृत है। पुण्य-पाप अथवा कर्तव्य-अकर्तव्यके निर्णयमें शास्त्र (धर्मग्रन्थ) ही प्रमाण हैं।

जिसकी दृष्टिमें जो महापुरुष हैं, उसे उन्हींका आचरण और निर्णय मानना चाहिये।

जो मनुष्यका शरीर प्राप्त करके कर्तव्याकर्तव्यका विचार किये बिना ही कार्य करता है, वह मनुष्यत्वसे गिर जाता है। वास्तवमें ऐसा मनुष्य मानव-शरीरमें भी पशुके ही तुल्य है।

संसारमें दो वस्तुएँ प्रत्यक्ष देखनेमें आती हैं—(१) चेतन, (२) जड। जो द्रष्टा है वह चेतन और जो दृश्य है, वह जड है। द्रष्टा भोक्ता है, दृश्य भोज्य है। द्रष्टाके लिये ही दृश्य है। त्याग-बुद्धिसे ज्ञानपूर्वक दृश्यका उपभोग करनेमें मुक्ति है अर्थात् इस चेतनका दुःख और पापोंसे मुक्त होकर परम आनन्द और परम शान्तिमें निवास है। बिना समयके उपभोगसे बन्धन, पतन, दुःख और अशान्ति है।

जो कर्म अपने या किसी भी अन्य चेतन जीवके लिये इस लोक और परलोकमें वस्तुतः लाभजनक है, वह कर्तव्य है और जिससे अपना या अन्य किसी जीवका इहलोक और परलोकमें अहित होता है, वही अकर्तव्य है। इसी कर्तव्य-अकर्तव्यको शुभ-अशुभ, कार्य-अकार्य, विधि-निषेध या पुण्य-पाप कहा जा सकता है।

स्वयं हिंसा करना, दूसरेसे करवाना और हिंसाका समर्थन करना—यह तीन प्रकारकी हिंसा है। यह तीन प्रकारकी हिंसा लोभ, क्रोध और अज्ञानके हेतुओंसे होनेके कारण (३×३=९) नौ प्रकारकी हो जाती है और नौ प्रकारकी हिंसा मृदु, मध्य और अधिमात्रासे होनेसे (९×३=२७) सत्ताईस प्रकारकी हो जाती है। यही सत्ताईस प्रकारकी हिंसा शरीर, वाणी और मनसे होनेके कारण इक्यासी भेदोंवाली बन जाती है। इसी तरह असत्य आदिका भी भेद समझ लेना चाहिये।

कर्मोंका अनुष्ठान करते समय भी चित्तसे भगवान्‌को मत भूलो।

पाप, प्रमाद और आलस्यमें दुःख और दोषोंको देखकर इनसे दूर रहो।

विषयासक्त, नास्तिक और प्रमादी पुरुषोंके निकट भी मत जाओ और दीन-दुःखी मनुष्योंकी सेवा करो।

मान, प्रतिष्ठा, कीर्तिको कलङ्कके समान समझो।

शम, दम, तितिक्षा आदि अमृतमय साधनोंका सेवन करो।

काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि कूड़े-कचड़ेको निकालकर हृदयरूपी घरको पवित्र करो। शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि क्षणिक और नाशवान् हैं, इसलिये इनसे व्यथित मत होओ अर्थात् सदा समचित्त रहो या पूर्वकृत कर्मोंके अनुसार ईश्वरका किया हुआ विधान समझकर इन्हें सहर्ष स्वीकार करो।

शील, विद्या, गुण, त्याग और तेज आदिमें जो वृद्ध हैं, ऐसे सदाचारी सज्जन महात्माओंके चरणोंका सेवन करो। ऐसे पुरुषोंका सङ्ग तीर्थ-सेवनसे भी बढ़कर है। इसलिये कुतर्कको छोड़कर उनके दिये हुए अमृतमय उपदेशका भगवत्-वाक्योंके समान आदर करो।

प्रत्येक कर्म करनेके पूर्व ही सावधानीके साथ यह सोच लेना चाहिये कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह मेरे लिये सर्वथा लाभप्रद है या नहीं। यदि उसमें कहीं जरा भी त्रुटि मालूम पड़े तो उसका तुरंत सुधार कर लेना चाहिये।

सावधानीसे समयका व्यय करनेसे उसका स्वार्थ भी परमार्थके रूपमें परिणत होकर उसके सम्पूर्ण कार्योंकी सफलता हो जाती है अर्थात् वह कृतकार्य हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्यको दिन-रातके चौबीस घंटेके चार विभाग कर लेने चाहिये। उनमेंसे छः घंटे तो लोक-सेवा एवं स्वास्थ्य-रक्षाके लिये यथायोग्य आहार-विहार आदिमें, छः घंटे न्यायपूर्वक द्रव्योपार्जनरूपी कर्ममें, छः घंटे शयन करनेमें और छः घंटे केवल आत्मोद्धार करनेके लिये योग-साधनमें लगाने चाहिये।

(कार्यक्रम)

प्रातःकाल सूर्योदयसे लगभग डेढ़ या दो घंटे पहले बिछौनेसे उठ जाना चाहिये। प्रातः चार बजे उठकर यथासाध्य ईश्वर-स्मरण करके शौच-स्नानादिसे पाँच बजेतक निवृत्त हो जाना चाहिये। पाँचसे आठ बजेतक-का समय एकान्त और पवित्र स्थानमें बैठकर आत्मोद्धारके

लिये ही यथारुचि शास्त्रविधिके अनुसार उपर्युक्त प्रकारसे केवल भजन, ध्यान आदि ईश्वरोपासनामें ही बिताना चाहिये । आठसे दस बजेतकका समय कौटुम्बिक, सामाजिक आदि सेवा और सुधारके कार्य तथा भोजनादि स्वास्थ्योपयोगी कार्योंमें लगाना चाहिये । दससे चार बजेतकका समय जीविकाके लिये वर्णाश्रमके अनुसार न्यायानुकूल द्रव्योपार्जनमें लगाना चाहिये । चारसे छः बजेतकका समय कौटुम्बिक, सामाजिक और अपनी रुचि एवं शक्ति हो तो राष्ट्रिय और जागतिक सेवा और उन्नतिके कार्यमें व्यतीत करना चाहिये । छः से नौ बजेतक आत्मोद्धारके लिये यथारुचि शास्त्रविधिके अनुसार भजन, ध्यान, सत्सङ्ग, कथा-कीर्तन एवं शास्त्रके विचार और पठन-पाठन आदि ईश्वरोपासनामें ही बिताना चाहिये । नौसे दस बजेतक भोजन एवं स्वास्थ्य-रक्षाके निमित्त समय बिताना चाहिये और रात्रिके दस-से चार बजेतक शयन करना चाहिये । उपर्युक्त समय विभागमें अपनी रुचि और सुविधाके अनुसार परिवर्तन भी किया जा सकता है ।

अपने शरीर और कुटुम्बका निर्वाह जितने कम धनसे हो सके उतने ही कममें करना चाहिये । इसके बाद बचे हुए द्रव्यका अंश अपने वर्णधर्मके अनुसार स्वार्थ त्यागकर शास्त्रानुकूल यथासाध्य देव, पितृ, मनुष्य और प्राणिमात्रके हितमें व्यय करना चाहिये ।

परमेश्वरके नामका जप और स्वरूपका ध्यान नित्य-निरन्तर करते हुए ही परमेश्वरप्रीत्यर्थ शारीरिक, कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रिय, जागतिक एवं जीविकादिके भी सम्पूर्ण कर्म फलासक्तिको त्याग कर ही करने चाहिये ।

दूसरोंसे अपनेको श्रेष्ठ माननेवाला तो नीचे गिरता है; क्योंकि उसमें अहंकारबुद्धि होती है और अहङ्कार अज्ञानजनित होनेसे पतनका कारण है ।

दूसरोंसे अपनेको श्रेष्ठ मानना ही मूढ़ता है । दीन मानना तो गुण है । अपनेको नीचा समझनेसे कोई नीचा नहीं होता, प्रत्युत वह तो सबसे ऊँचा समझा जाता है ।

स्त्रीके लिये पतिकी, शिष्यके लिये गुरुकी, पुत्रके लिये माता-पिताकी सेवाभक्ति भी मोक्षदायक हो सकती है, जबकि वह ईश्वरकी आज्ञा मानकर ईश्वरके लिये एवं ईश्वर-बुद्धिसे की जाय; क्योंकि शास्त्र सब ईश्वरकी आज्ञा है और ईश्वरकी आज्ञासे की हुई सेवाभक्ति ईश्वरकी ही भक्ति समझी जाती है ।

सत्य परमात्माका स्वरूप है । केवल सत्यके आश्रयसे मनुष्य मोक्षका अधिकारी बन सकता है । सत्य अमृत है, सत्य सब गुणोंकी खानि है और यही सनातन-धर्म है ।

फल और आसक्तिको छोड़कर भगवान्‌की आज्ञा मानकर निष्कामभावसे देवपूजा करना भगवान्‌की ही पूजा है । इसीको भगवान् अपनी सात्त्विक और विधि-पूर्वक पूजा बताते हैं ।

गीता अध्याय १७ । १४ के अनुसार शास्त्रानुसार यथाशक्ति नित्य और नैमित्तिक प्राप्त देवताओंकी सभी पूजाएँ शास्त्रकी विधिके अनुसार षोडशोपचारसे करनी चाहिये ।

ईश्वरका कानून निर्भ्रान्त, शङ्कारहित, ज्ञानपूर्ण और स्नेहपूरित रहता है । जो मनुष्य ईश्वर-कृपासे श्रीभगवान्‌के कानूनका रहस्य समझ लेता है, वह तो फिर अपना जीवन उसीके अनुसार चलनेमें लगा देता है ।

शास्त्रोंमें जिन्हें सदाचार बतलाया गया है, वे ही ईश्वरीय कानूनमें सेव्य और पालनीय नियम हैं और जिन्हें दुराचार कहा गया है, वे ही ईश्वरीय कानूनमें निषिद्ध और त्याज्य पदार्थ हैं ।

अहिंसा, सत्य, तप, त्याग, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, यज्ञ, दान, सेवा, पूजा और महापुरुषोंका आज्ञा-पालन आदि सदाचार हैं ।

दया, पवित्रता, शम, दम, समता, क्षमा, धैर्य, प्रसन्नता, ज्ञान, वैराग्य और निरभिमानता आदि सद्गुण हैं ।

हिंसा, असत्य, चोरी, जारी, अभक्ष्य-भक्षण, मादक-वस्तु-सेवन, प्रमाद, निन्दा, द्यूत और कटु-भाषण आदि दुराचार हैं।

काम, क्रोध, लोभ, अविवेक, अभिमान, दम्भ, मत्सरता, आलस्य, भय, शोक आदि दुर्गुण हैं।

सदाचारसे सद्गुणोंकी उत्पत्ति और वृद्धि होती है तथा सद्गुणोंसे सदाचारकी उत्पत्ति-वृद्धि होती है।

दुराचारसे दुर्गुणोंकी उत्पत्ति और वृद्धि होती है तथा दुर्गुणोंसे दुराचारकी उत्पत्ति एवं वृद्धि होती है।

सदाचार और सद्गुणोंका सेवन ही ईश्वरीय कानूनको मानना है तथा दुराचार और दुर्गुणोंका सेवन ही उस कानूनको भंग करना है।

ईश्वरके कानूनको माननेवाला पुरस्कारका पात्र होता है और कानूनको तोड़नेवाला दण्डका पात्र होता है।

जो मोहवश भगवान्‌की निषेधाज्ञाको न मानकर कानून-भंगरूपी पाप करते हैं, उनके लिये दयापूर्ण दण्डकी व्यवस्था की गयी है।

ईश्वरका प्रत्येक नियम पापियोंके पाप और दुःखियोंके दुःखको नाश करनेवाला है।

मनुष्यमें दोष देखकर उससे घृणा या द्वेष नहीं करना चाहिये। घृणा या द्वेष करना हो तो मनुष्यके अंदर रहनेवाले दोषरूपी विकारोंसे करना चाहिये।

जैसे किसी मनुष्यके प्लेग हो जानेपर उसके घरवाले प्लेगके भयसे उसके पास जाना नहीं चाहते, परंतु उसे प्लेगकी बीमारीसे बचाना अवश्य चाहते हैं, इसके लिये अपनेको बचाते हुए यथासाध्य चेष्टा भी पूरी तरहसे करते हैं; क्योंकि वह उनका प्यारा है। इसी प्रकार जिस मनुष्यमें चोरी, जारी आदि दोषरूपी रोग हों, उसे अपना प्यारा बन्धु समझकर उसके साथ घृणा या द्वेष न कर उसके रोगसे बचते हुए उसे रोगमुक्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। (समाप्त)

मनोबोध—६

(समर्थ स्वामी रामदासजी महाराजकी वाणी)

सदा बोलण्यासारिखें चालताहे।
अनेकीं सदा येक देवासि पाहे॥
सगूणीं भजे लेश नाहीं भ्रमाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥ ४९॥

जो जैसा बोलता है वैसा ही कर्म करता है। (जिसमें वाणी और कर्मकी एकरूपता है।) जो अनेक देवों एवं मनुष्योंमें भी एक ही देवको देखता है, जो सब देवोंका सम्मान करता हुआ भी उनमें एक ही देव (अपने इष्ट आराध्य)को ही देखता है तथा संसारमें सभी जीवोंको अपने आराध्यके रूपमें देखता हुआ संसारको ब्रह्ममय देखता है; अर्थात् **'सीय राममय सब जग जानी'** अथवा **'जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि'** के समान जिसकी वृत्ति हो गयी है, जो सगुणकी उपासना करता है तथा जिसके अन्तःकरणसे अज्ञान और संदेह नष्ट हो गया है, वह सर्वोत्तम श्रीरामजीका दास जगत्‌में धन्य है।

नसे अंतरीं कामकारी* विकारी।
उदासीन जो तापसी ब्रह्मच्चारी॥
निवाला मनीं लेश नाहीं तमाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥ ५०॥

जिसके अन्तःकरणमें विकार उत्पन्न करनेवाली कामभावना नहीं है, जो सांसारिक बातोंसे उदासीन है, जो तापस एवं ब्रह्मचारी है, जिसका मन शान्त हो गया है तथा जिसकी बुद्धिमें अज्ञान लेशमात्र भी नहीं रह गया है, वह सर्वोत्तम श्रीरामजीका दास जगत्‌में धन्य है।

* किसी-किसी पुस्तकमें 'कामकारी'की जगह 'नाना विकारी' शब्दका प्रयोग किया गया है। तब अर्थ होगा—नाना कामविकार।

मदें मछरें सांडिला स्वार्थबूधी।
प्रपंचीक नाहीं जयातें उपाधी॥
सदा बोलणें नम्र वाचा सुवाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥५१॥

जिसने अहंकार तथा मात्सर्ययुक्त स्वार्थबुद्धि त्याग दी है, जिसे कोई भी प्रापञ्चिक उपाधि नहीं है, जो सदा सुन्दर और नम्र वाणी बोलता है, वह सर्वोत्तम श्रीरामजीका दास जगत्‌में धन्य है।

क्रमी वेळ जो तत्त्वचिंतानुवादे।
न लिंपे कदा दंभ वादें विवादें॥
करी सूखसंवाद जो ऊगमाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥५२॥

जो समयको तत्त्वचिन्तनमें व्यतीत करता है, जो अहंकारयुक्त वाद-विवादमें नहीं पड़ता, जो सृष्टिके उद्गमस्थानका (चिन्तन करनेके उपरान्त) सुखपूर्वक संवाद करता है (लोगोंको बताता है)। ऐसा सर्वोत्तम श्रीरामजीका दास जगत्‌में धन्य है।

सदा आर्जवी प्रीय जो सर्व लोकीं।
सदा सर्वदा सत्यवादी विवेकी॥
न बोले कदा मिथ्य वाचा त्रिवाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥५३॥

जो सदा विनम्र आचरण करता हुआ सब लोगोंके सभी समाजोंमें प्रिय होता है, जो हर समय सत्य सम्भाषण करता है, विवेकी होता है, जो कभी तीन-चार प्रकारसे (उलट-पलटकर वाक्य-रचना करके) असत्य-भाषण नहीं करता, वह सर्वोत्तम श्रीरामजीका दास जगत्‌में धन्य है।

सदा सेवि आरण्य तारुण्यकाळीं।
मिळेना कदा कल्पनेचेनि मेळीं॥
चळेना मनीं निश्चयो दृढ ज्याचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥५४॥

जो तरुणाईमें सदैव गहन वनोंमें वास करता है, जो कभी समयको कल्पनाओंमें नष्ट नहीं करता, जिसके मनसे 'मैं ब्रह्म हूँ'—यह निश्चय कभी नहीं डिगता, वह सर्वोत्तम श्रीरामजीका दास जगत्‌में धन्य है।

नसे मानसीं नष्ट आशा दुराशा।
वसे अंतरीं प्रेमपाशा पिपाशा॥
ऋणी देव हा भक्तिभावें जयाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥५५॥

जिसके मनमें दुष्ट आशाएँ या निराशा नहीं होती, जिसके भीतर (सबको बाँधनेवाला) प्रेमपाश होता है, किंतु जो स्वयं कभी उस प्रेमपाशमें नहीं बँधता (वैराग्यवान् होनेके कारण जो स्वयं निर्मोही है), जिसके भक्तिभावके कारण भगवान् ऋणी हो गये हैं, वह सर्वोत्तम श्रीरामजीका दास जगत्‌में धन्य है।

दिनाच्या दयाळु मनाच्या मवाळु।
स्नेहाळु कृपाळु जनीं दासपाळु॥
तया अंतरीं क्रोध संताप कैचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥५६॥

जो दीनानाथ है, दयालु है, स्नेहिल है, मनसे ममता करनेवाला है, कृपावान् है और समाजमें अपने सम्प्रदायका पालन करनेवाला है, उसके अंदर क्रोध और संताप कैसे हो सकते हैं ? ऐसा परम शिष्य प्रेमी सर्वोत्तम श्रीरामजीका दास जगत्‌में धन्य है।

जगीं होइजे धन्य या रामनामें।
क्रिया भक्ति उपासना नित्यनेमें॥
उदासीनता तत्वता सार आहे।
सदा सर्वदा मोकेळी वृत्ति राहे॥५७॥

जो जगमें रामनामके द्वारा धन्य हो गया है, अतः नित्य नियमपूर्वक सत्क्रिया, भक्ति और उपासना करता है। हे मन ! उदासीनता (सांसारिक भोग-सुख और विषय-वासनाके प्रति पूर्ण वैराग्य) ही तत्त्वतः संसारमें सार तत्त्व है, अतः सदा-सर्वदा उन्मनी (वीतरागी) वृत्तिसे रहो। (अनु०—कु० रोहिणी गोखले)

(क्रमशः)

संस्कार—शास्त्रीय दृष्टिमें

(लेखक—आचार्य पं० श्रीमधुसूदनजी शास्त्री)

विश्वमें चारों ओर दृष्टि डालकर देखिये तो स्पष्ट हो जायगा कि जो पदार्थ संस्कृत अर्थात् संस्कारसे सम्पन्न या सुधरा हुआ है, उसीको लेनेके लिये मनुष्य उतावला होकर दौड़ता है। दूसरी ओर जो पदार्थ वस्तुतः यथार्थ है, किंतु यदि वह असंस्कृत है तो जनता उससे पराङ्मुख हो जाती है। ज्ञानी पुरुष तो कुछ समझकर ही ऐसा करता होगा, किंतु साधारण जन तो यदि कोई पदार्थ सुधरा हुआ नहीं है तो उसे नहीं लेता।

प्रश्न होगा कि संस्कार किसे कहते हैं और वे कितने हैं, अग्रिम पङ्क्तियोंमें इसीपर प्रकाश डाला जा रहा है—

'संस्कारः प्रतियत्नेऽनुभवे मानसकर्मणि।'

—इस मेदिनी-कोशके अनुसार 'संस्कार' (के अर्थ हैं) 'प्रतियत्न' और 'प्रतियत्न' का अर्थ है विद्यमान पदार्थमें अधिकता लानेके लिये गुणका अतिशय आधान अथवा जिस पदार्थमें व्यंग्यता आ गयी है उसे हटाकर उसे अपने वास्तविक रूपमें स्थापित करनेके लिये गुण या अतिशयताका आधान प्रतियत्न कहलाता है। जैसे १–आभूषणोंको उज्ज्वल करना, गहनोंमें पालिश करना, २–अस्त्रोंको तीक्ष्ण करना, ३–वस्त्रोंको धो देना, ४–पात्रोंको परिमार्जित (स्वच्छ) करना, ५–धान आदि अन्नोंको पछाड़ देना अर्थात् उनमेंसे कूड़ा-करकट निकाल देना, ६–रुग्ण शरीरको नीरोग बनाना, ७–त्रुटित या हीन अङ्गकी पूर्ति करना आदि, ८–अभ्यास एवं मनन-चिन्तनद्वारा शास्त्रोंका अनुभव भी संस्कार कहा जाता है। फलतः अनुभवी पुरुष समाजमें अधिक प्रतिष्ठित होता है। ९–मानसकर्म भी 'संस्कार' कहलाता है। जैसे व्रत, अभीष्ट लक्ष्यकी सिद्धिके लिये शास्त्रोक्त नियम, तप, संतोष एवं ईश्वर-प्रणिधान आदि हैं। १०–पाक भी एक संस्कार है। जीरेसे संस्कृत की गयी अर्थात् छौंकी गयी तरकारी जैरिक। दधिसे दाधिक और तक्रसे ताक्रिक अर्थात् रायता दाधिक एवं ताक्रिक है। ११–व्याकरणशास्त्रके अनुसार शब्दोंकी साधनिका, शुद्धि भी संस्कार कहलाता है। कहा भी है—**'संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च।'** अर्थात् संस्कारवाली वाणी अर्थात् व्याकरणसे शुद्ध हुई वाणीसे जैसे मनीषी पवित्र एवं विभूषित होता है, वैसे ही पार्वतीसे हिमगिरि या हिमालय विभूषित होता है। १२–शिक्षण भी एक संस्कार है। जैसे कि कहा गया है—**'निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ'**—स्वाभाविक शिक्षाके संस्कारसे वह कुमार विनीत है।

१३–अलंकार भी 'संस्कार' कहलाता है।—**'स्वभावसुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते।'** अर्थात् जो वस्तु स्वभावसे ही सुन्दर होती है उसे सजानेके लिये संस्कार अर्थात् अलंकारकी अपेक्षा नहीं होती। १४–प्रभाव भी संस्कार कहलाता है—**'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।'** जो संस्कार या प्रभाव नूतन पात्रपर पड़ जाता है, वह बदला नहीं जा सकता। जैसे बालकोंपर संगति (सत्संगति या कुसंगति)-से जैसा प्रभाव पड़ जाता है, वह फिर बदलता नहीं। १५–सूक्ष्मवासना भी संस्कार है। जैसा कि कहा है—**'फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव।'** अर्थात् प्राक्तन जन्मान्तरीय संस्कार—वासनाएँ जैसे कार्यकी सिद्धिसे अनुमेय—जाननेके योग्य होती हैं, वैसे ही राजा दिलीपके क्रियाकलाप फलसे जाने जाते थे।

इस तरह विचार करनेपर 'संस्कार' शब्दके पंद्रह अर्थ प्राप्त होते हैं। इनमें गुणाधान, अतिशयाधान या

उत्कर्षाधानरूप जो संस्कार है, उसे नैयायिक लोग आत्मामें मानते हैं। महानैयायिक उदयनाचार्यजी अपने 'कुसुमाञ्जलि' नामक ग्रन्थमें लिखते हैं—

'संस्कारः पुंस एवेष्टः प्रोक्षणाभ्युक्षणादिभिः।'

प्रोक्षणादि वेदविहित क्रियाओंसे जन्य अतिशय-विशेष या पुण्यविशेषके आधानका नाम संस्कार है, जो पुरुष अर्थात् आत्मामें ही माना जाता है।

वैसे गर्भाधानादि अनुष्ठानसे उत्पन्न हुआ पुण्यविशेष-रूप संस्कार जीवमें ही होता है। इस मतमें गर्भाधानादि अनुष्ठानमें यह 'संस्कार' पद लाक्षणिक है; क्योंकि मुख्यरूपसे 'संस्कार' पदका अर्थ पुण्यविशेष है और गर्भाधानादि अनुष्ठान हैं स्मार्तक्रियाएँ। किंतु कार्य एवं कारणमें 'आयुर्घृतम्' की तरह अभेद मानकर पुण्यजनक गर्भाधानादि स्मार्त-क्रियाओंको भी 'संस्कार' कहा जाता है।

मीमांसक कहते हैं—**'व्रीहीन् प्रोक्षति व्रीहीनव-हन्ति'** आदि। इन वाक्योंद्वारा बतलाया हुआ प्रोक्षण एवं अवहनन व्रीहियोंमें ही ज्ञात होता है। वैसे ही गर्भाधानादि अनुष्ठान-क्रियारूप संस्कार शरीरमें ही होता है। इस मतमें भी 'संस्कार' पद पूर्ववत् लाक्षणिक है। उभय मतमें यह सिद्धान्त है कि द्विजातियोंके वेदके अध्ययन एवं अध्यापनके अधिकारके सम्पादक ये गर्भाधानादि संस्कार हैं।

अबतक 'संस्कार' शब्द कितने अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है, यह देखा गया। अब यह देखिये कि गुणाधान या अतिशयाधानरूप संस्कार कितने हैं और वे कब किये जाते हैं। इन संस्कारोंकी संख्याके विषयमें मतभेद हैं। एक मत कहता है कि संस्कार दस हैं और यही मत अधिक प्रचलित है; क्योंकि 'दशकर्मपद्धति' नामक ग्रन्थ इसी मतकी पुष्टि करता है। दूसरा मत कहता है कि संस्कार पंद्रह हैं। तीसरा मत कहता है कि संस्कार पचीस हैं तो चौथा मत कहता है कि संस्कार चालीस हैं। अन्तिम पाँचवाँ मत कहता है कि संस्कार अड़तालीस हैं।

प्रथम मतानुसारी दस संस्कार निम्नलिखित हैं—१—गर्भाधान, २—पुंसवन, ३—सीमन्तोन्नयन, ४—जातकर्म, ५—नामकरण, ६—अन्नप्राशन, ७—चूडाकर्म, ८—उपनयन, ९—समावर्तन एवं १०—विवाह।

इन्हें किस समय करना चाहिये इसके लिये शास्त्रकार बतलाते हैं—

गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्यन्दनात् पुरा।
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवे जातकर्म च॥
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडाकर्म यथाकुलम्॥
गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम्॥
समावर्तनमेतत्तु वेदाध्ययनकोत्तरम्।
विवाहः समये कार्यः सर्वेषां च यथेष्यते॥

अर्थात् जब स्त्रियाँ ऋतुमती हों, तब उसके चतुर्थ दिवससे सोलह रात्रियोंमें गर्भाधान-संस्कार किया जाता है। गर्भके हिलनेके पहले पुंसवन-संस्कार होना है, जिसके फलस्वरूप पुत्र उत्पन्न होता है। छठे या आठवें मासमें सीमन्तोन्नयन-संस्कार होता है। बच्चेके उत्पन्न होनेपर जातकर्म-संस्कार किया जाता है। जन्मसे ग्यारहवें दिन नामकरण-संस्कार होता है। जन्मसे चौथे महीनेमें बालकका सौरीसे बाहर निष्क्रमण करना चाहिये। छठे मासमें अन्नप्राशन-संस्कार होता है। मुण्डन कुलव्यवहारके अनुसार (प्रथम या तृतीय वर्षमें) होता है। गर्भसे या जन्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका, ग्यारहवेंमें क्षत्रियका और बारहवेंमें वैश्यका उपनयन-संस्कार (जनेऊ) होता है। इस संस्कारके द्वारा बालक वेदके अध्ययनका अधिकारी हो जाता है। वेदाध्ययनके समाप्त होनेपर समावर्तन-संस्कार होता है।

इसीका नाम स्नान है और उससे सम्पन्न 'स्नातक' कहलाता है। दसवाँ संस्कार विवाह है, जो अपनी कुलपरम्परा या सुविधानुसार किया जाता है।

भगवान् वेदव्यासजीने सोलह संस्कार माने हैं, जो निम्नलिखित हैं—१–गर्भाधान, २–पुंसवन, ३–सीमन्तोन्नयन, ४–जातकर्म, ५–नामकरण ६–निष्क्रमण, ७–अन्नप्राशन, ८–मुण्डन, ९–कर्णवेध, १०–उपनयन, ११–वेदारम्भ, १२–केशान्त, १३–समावर्तन, १४–विवाह, १५–अग्निपरिग्रह और १६–त्रेताग्निपरिग्रह।

यहाँ 'अग्निपरिग्रह'का अर्थ है गृह्याग्निका ग्रहण। चतुर्थी-कर्म करनेके बाद जिस अग्निकी साक्षीमें विवाह हुआ है, ब्राह्मण युवक उस अग्निका परिग्रहण करता है। इसे आवसथ अर्थात् अपने घर या निवासमें स्थापित करनेके कारण 'आवसथ्य' कहते हैं। यह 'स्मार्ताग्निहोत्र' है। शास्त्र कहते हैं कि इस अग्निमें पका हुआ अन्न ब्राह्मण सद्गृहस्थको खाना चाहिये, अन्यमें नहीं। त्रेताग्नि-परिग्रह यह श्रौत-विधान है, अतः यह श्रौत अग्नि कहा जाता है। इन सोलह संस्कारोंमें तेरह संस्कारोंका अधिकारी पिता है और अन्तके तीनोंका अधिकारी स्वयं पुत्र है, जैसा कि कहा गया है—

त्रयोदशानामाद्यानामधिकारी पिता भवेत्।
इतरेषां त्रयाणां स्यादधिकारी स्वयं सुतः॥
(व्याससमृति)

अङ्गिराने ये पचीस संस्कार कहे हैं—१–गर्भाधान, २–पुंसवन, ३–सीमन्त, ४–विष्णुबलि-कर्म, ५–जातकर्म, ६–नामकर्म, ७–निष्क्रम, ८–अन्नप्राशन, ९–चूडाकर्म, १०–उपनयन, ११–१४–चारों वेदोंके वेदारम्भ, १५–स्नान (समावर्तन), १६–विवाह, १७–आग्रयण, १८–अष्टका, १९–श्रावणीपर्व, २०–आश्विनीपर्व, २१–मार्गशीर्षीपर्व, २२–पार्वण, २३–उपाकर्म, २४–उत्सर्ग, २५–नित्यमहायज्ञ।

'गौतमधर्मसूत्र'में चालीस संस्कार कहे गये हैं—**'चत्वारिंशत्संस्कारैः संस्कृतः'** (१। ८। ८)। वे संस्कार ये हैं—१–गर्भाधान, २–पुंसवन, ३–सीमन्तोन्नयन, ४–जातकर्म, ५–नामकरण, ६–अन्नप्राशन, ७–चूड़ाकर्म, ८–उपनयन, ९–१२–चार वेदोंके व्रत, १३–समावर्तन, १४–विवाह, १५–देवयज्ञ, १६–पितृयज्ञ, १७–अतिथियज्ञ, १८–भूतयज्ञ, १९–ब्रह्मयज्ञ (यह पञ्चमहायज्ञ), २०–श्रावणीकर्म, २१–आश्विनी-कर्म, २२–आग्रहायणी-कर्म, २३–चैत्रकर्म, २४–अग्न्याधान (श्रौत एवं स्मार्त), २५–नित्याग्निहोत्र, २६–दर्श-पौर्णमासयाग, २७–चातुर्मास्ययाग (वैश्वदेव, वरुणप्रघास, शाकमेध, शुनासीरीय), २८–आग्रयणेष्टि (नवान्नेष्टि), २९–निरूढ़पशुयाग, ३०–सौत्रामणीयाग (यह सात हविर्यज्ञ), ३१–अग्निष्टोम, ३२–अत्यग्निष्टोम, ३३–उक्थ्य, ३४–षोडशी, ३५–वाजपेय, ३६–अतिरात्र, ३७–आप्तोर्याम—(यह सात सोमयाग), ३८–पितृमेध (पिण्डपितृयज्ञ), ३९–अष्टकाश्राद्ध, ४०–पार्वणश्राद्ध। (गौतम-धर्मसूत्र १। ८। १४-२२; गौतम-स्मृति ८। ३)। १–दया, २–शान्ति, ३–अनसूया, ४–शौच, ५–अनायास, ६–मङ्गल, ७–अकार्पण्य, ८–अस्पृहा—इन आठ आत्म-गुणोंके साथ गौतमने अड़तालीस संस्कार कहे हैं।

इनका फल लिखा है कि **'यस्यैते चत्वारिंशत्-संस्कारा अष्टावात्मगुणाश्च स ब्राह्मणः ब्रह्मणः सायुज्यमाप्नोति'**—अर्थात् जिसके ये चालीस संस्कार हो गये हैं और जिसमें ये आठ आत्मगुण हैं, वह ब्राह्मण ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त कर लेता है।

संस्कारोंकी संज्ञा

उपर्युक्त अड़तालीस संस्कारोंको 'ब्राह्म' एवं 'दैव' दो विभागोंमें विभाजित किया जाता है। गर्भाधानसे समावर्तनपर्यन्त संस्कारोंका नाम 'ब्राह्म' है और बादके

संस्कारोंका नाम है 'दैव' । दैव संस्कारोंमें ही पीछे बतलाये गये सात पाकयज्ञ, सात हविर्यज्ञ और सात सोमयज्ञ आते हैं ।

ब्राह्म एवं दैव संस्कारोंका फल

ब्राह्म संस्कारोंसे संस्कृत मानव ऋषियोंके गुल्म होते हैं तथा दैव संस्कारोंसे संस्कृत देवोंके सदृश होते हैं । शास्त्रोंमें इन संस्कारोंके दो लाभ दिखाये गये हैं । बीजका अर्थ शुक्र एवं शोणित हैं । उनके सम्बन्धसे आनेवाले दोष तथा निषिद्ध कालमें किये गये मैथुनके कारण होनेवाले दोष 'बैजिक दोष' कहलाते हैं और अपवित्र गर्भकोशमें रहनेके कारण होनेवाले दोष 'गर्भक दोष' हैं । इन संस्कारोंसे ये दोनों प्रकारके दोष दूर होते हैं । यह कुल्लूकभट्टका मत है । बीज एवं गर्भ दोनों पापके कारण नहीं है; किंतु दोनोंके संयोगसे अपवित्रता होती है । उस अपवित्रताका निराकरण करना इन संस्कारोंका काम है । यह मेधातिथिका मत है ।

विशेष ज्ञातव्य यह है कि यद्यपि आचार्योंने इन संस्कारोंका पापोंके एवं दोषोंके शमनके लिये विधान किया है, अतः ये काम्यकर्म हैं, फिर भी विवाह-संस्कार काम्य कर्म एवं नित्यकर्म दोनों है; क्योंकि ब्राह्मण देव, ऋषि एवं पितर तीनोंके ऋणको लेकर ही उत्पन्न होता है । उनमें यज्ञोंसे देव-ऋण, ब्रह्मचर्यव्रतानुष्ठानपूर्वक वेदाध्ययनसे ऋषियोंका ऋण एवं पुत्र-पौत्रोंसे पितरोंके ऋणसे वह मुक्त होता है । अतएव ये नित्यकर्म हैं । इसीलिये कहा गया है—

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यो दारसंग्रहः ।

इसी प्रकार उपनयन-संस्कार भी नित्यकर्म है; क्योंकि वेदके अध्ययन-अध्यापनमें अधिकारकी प्राप्तिके लिये वह अत्यावश्यक है । नामकरण भी नित्य है; क्योंकि नाम एवं गोत्रके उच्चारणसे ही सब क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यके लिये ये संस्कार मन्त्रोंद्वारा होते हैं, जब कि शूद्रोंके बिना मन्त्रके ही । स्त्रियोंका केवल विवाह-संस्कार मन्त्रोंसे होता है, जब कि शूद्र स्त्रीका विवाह-संस्कार भी अमन्त्रक ही होता है । स्त्रियोंका विवाह ही उपनयन-संस्कार है ।

युगल-रस

(रचयिता—स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

ललीललनकी ललक सदा री ।
मिले-मिले हूँ रहहिं अमिल-से, यह रहस्य कोउ कहै कहा री ॥
मिले भये जो होत परम सुख, तासों प्यासहि बढ़त महा री ।
बढ़त प्याससों सरस मिलन-सुख, यही प्रीतिकी सरस सुधा री ॥
अनुभवको विलास है यह सब, याको समुझैं कोउ कहा री ।
तन-मनकी है सुरति न यामें, कैसे दोउकी होय चिन्हारी ॥
यही जुगल-रति जिनको जीवन वे हैं जगमें धन्य सदा री ।
उनकी चरन-सरन जिन पाई पावहिं वे रति-सुरस मुदा री ॥
पायो यह सुहाग व्रज-वनितन, यापै रही सदा बलिहारी ।
को सुनिहै गुनिहै या रसकों, जाके बस हैं जुगल सदा री ॥

वेणुगीत

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क पृष्ठ ८७९ से आगे]

भगवान्‌के वंशी-निनादको सुनकर श्रीगोपाङ्गनाओंमें एक विचित्र भावका उदय हुआ। उस भावोदयमें वे अपने-आपको निस्तब्ध नहीं रख सकीं। अपने हृदयके भावोंका वर्णन करना चाहा, पर वर्णन आरम्भ करते ही श्रीकृष्णका मधुर-मनोहर रूप-सौन्दर्य और उनकी चेष्टाएँ उनके सामने प्रकट हो गयीं। एक ओर तो वे अंदरके प्रेमोदयजनित मिलनेच्छाके भावको छिपा नहीं रही थीं, दूसरी ओर बिना कहे रहा भी नहीं जाता था। इस अवस्थामें यह तीसरी वस्तु पैदा हो गयी, वह स्वरूप-सौन्दर्य सामने प्रकट हो गया। उसे देखनेमें वे विभोर हो गयीं और उसपर सोचने लगीं।

शुकदेवजी उसका वर्णन करते हैं कि वह रूप कैसा था, परंतु उसके लिये उनके पास कोई भाषा नहीं थी। शुकदेवजीका जो रूपवर्णन यहाँपर है, वह ठीक-ठीक खुलकर वर्णन कर सकते हों ऐसा नहीं है। वह है दबी-सी जबानसे संक्षिप्त-सा वर्णन—पूरा न तो वे देख सके हैं और जितना देख सके, उसे भी वर्णन करनेकी भाषामें शक्ति नहीं। आचार्य लोग कहते हैं कि वाककी अधिष्ठात्री देवी श्रीसरस्वतीजी भी यदि चाहें कि इस छविका वर्णन वाणीके द्वारा कर दें तो असम्भव है।

वास्तवमें वाणीद्वारा तो सम्भव बहुत कम वस्तुएँ होती हैं। दूसरी-दूसरी इन्द्रियाँ जिस प्रकारसे जिस वस्तुका अनुभव करती हैं, उनके अनुभवको केवल मन जानता है। वाणीके पास भाषा नहीं कि उसे व्यक्त कर सके। जैसे, हमने किसी मीठी वस्तुको चखा, अब जीभको ज्ञात है कि वह मीठा कैसा है, जीभके द्वारा मन उसकी उपलब्धि करता है। हम कह दें कि बहुत मीठा, मिश्री-सरीखा मीठा तो मिश्री कैसी मीठी ? अब उसके लिये उपमान-उपमेय खोजते रहिये, सांकेतिक भाषामें भले कहें कि इससे अधिक या इससे कम, किंतु जीभने जो अनुभव किया उसे वाणी तो बता नहीं सकती। आँखसे हमने किसी वस्तुको देखा। आँखने मनके द्वारा उस रूपकी उपलब्धि की, पर उसका वर्णन कर सके, यह आँखकी सामर्थ्य कहाँ ? क्योंकि—'गिरा अनयन नयन बिनु बानी'—वाणीके पास नेत्र नहीं और नेत्रके पास वाणी नहीं।

इसलिये प्राकृतिक वस्तुओंका भी भाषामें, शब्दोंमें जो वर्णन होता है, वह बहुत सीमित होता है, किंतु जहाँ अप्राकृतिक तत्त्व है, जहाँ सारा-का-सारा सच्चिन्मय है, उसे भौतिक आँखें कभी-कभी चिन्मयताको प्राप्त कर—दिव्य नेत्र पाकर भी वर्णन नहीं कर सकतीं। भगवान्‌ने दिव्य नेत्र दिये अर्जुनको विराट् रूप देखनेके लिये। कभी-कभी दिव्य नेत्र पाकर कुछ देरके लिये भले उसकी उपलब्धि कर लें, किंतु उसके वर्णनके लिये भाषा नहीं है, जो व्यक्त कर सके। शुकदेवजीने ऐसे नेत्र प्राप्त किये थे, उनसे वे किसी अंशमें देख तो पा रहे थे, परंतु वर्णन करनेकी भाषा या शब्द उनके पास भी नहीं। वास्तवमें पूरी-पूरी उपलब्धि उन्हें भी नहीं हुई—किसीको भी नहीं होती। वे कह सकते हैं, जिनके नेत्रोंमें ही उस स्वरूपका निर्माण होता है। जिनके लिये उस रूपमें वे स्वयं परिणत होते हैं। यह प्रकृतिकी विकृति होती है, ऐसा नहीं है, वे तो स्वयं सच्चिदानन्दमयविग्रह हैं। उनके भक्तका जब जैसा मन होता है, उसी प्रकारसे वह रूप प्रकट होता है। गोपियोंके मनमें जो एक सौन्दर्य-माधुर्यकी कल्पना आयी,

उसी रूपमें वह सौन्दर्य-माधुर्य प्रकट हो गया। कहते हैं कि जो ये भाववती व्रजरमणियाँ थीं, उन्होंने अपने भावके द्वारा भावरूपी भगवान्के उस रूपको देखा। वह जो स्वरूप था, उसकी न तो कहीं कोई तुलना है, न उससे विशेष सुन्दर कोई वस्तु हो सकती है। असमोर्ध्व सौन्दर्य-माधुर्यका वह घनीभूत मूर्त स्वरूप था। जिस सौन्दर्य, जिस माधुर्यकी कहीं कोई तुलना नहीं, जो माधुर्य और सौन्दर्य सबसे विशेष है,- इस प्रकारके सौन्दर्य-माधुर्यकी मूर्तिमयी प्रतिमा वह नटवर-वपु था।

वंशी-माधुर्यका वर्णन करते-करते श्रीगोपाङ्गनाओंके मनमें, हृदयमें और नेत्रोंके सामने मनमोहनकी छवि विकसित हो गयी। वे प्रेमावेशमें मग्न हो गयीं और अपने कलित नेत्रोंसे एक दूसरेकी ओर देखती हुई अपने श्यामसुन्दरको प्रेम-भरे नेत्रोंसे निरखने लगीं। एकमात्र भगवान् श्यामसुन्दरका प्रीतम-प्रेष्ठ, मधुरतम सौन्दर्य-माधुर्य ही उनकी आकाङ्क्षाकी एकमात्र वस्तु है। मानो सारी आकाङ्क्षाओंने सब जगहसे सिमटकर—एकीभूत होकर उनके मनपर अपना अधिकार जमा लिया है। ये हैं अनन्य आकाङ्क्षाकी एकमात्र घनीभूत मूर्ति। यह प्रेमियोंकी, भक्तोंकी आकाङ्क्षाका संकेत है। जिनकी आकाङ्क्षाएँ बहुमुखी होती हैं, बहुत वस्तुओंको जिनका मन चाहता है, वे आकाङ्क्षाएँ न कभी पूर्ण होती हैं और न कभी उनसे सुख मिलता है। कामना उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। कामनाकी पूर्ति भी कामनाका नाश नहीं करती——वह तो कामनाको बढ़ाती रहती है। ज्यों-ज्यों अग्निमें ईंधन और घी पड़ता है, त्यों-त्यों अग्नि और भी प्रज्वलित होती है, भड़कती है, इसी प्रकार कामनाकी आग भोगोंकी प्राप्तिसे बुझती नहीं, उत्तरोत्तर बढ़ती है। संसारके भोगोंकी यह स्वाभाविक स्थिति है। वे अनित्य हैं, अपूर्ण हैं, विनाशी हैं, अतएव दुःखमय हैं। दुःखमय भोग कभी सुखकी प्राप्ति करा दे——यह असम्भव है। भ्रमसे सुखकी प्रतीति एक बार हो सकती है। वह सुख भी विषयोंसे नहीं आता। कामनाकी वस्तु जब प्राप्त होती है, तब कुछ क्षणोंके लिये चित्त स्थिर होता है, सुखकी अनुभूति करता है। सुख आता है आत्मसंतोषसे, दूसरोंसे या विषयोंसे नहीं। उस सुखको वह भूलसे मान लेता है विषयोंसे मिला हुआ। विषय तो चोट ही करते हैं। वे तो घाव ही करते हैं, कभी आराम पहुँचाते नहीं। यह तो हुई विषयोंकी बात। बुद्धिमान् आदमी विषयोंकी आकाङ्क्षाको छोड़ देता है। यह बुद्धिमान्की परिभाषा है।

भगवान्ने गीतामें कहा है——

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥
(५। २२)

जितने भी संस्पर्शजनित——इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका संस्पर्श होनेपर प्राप्त होनेवाले सुख-भोग हैं, ये सारे-के-सारे दुःखयोनि हैं, दुःखोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं और आदि एवं अन्तवाले हैं। बुद्धिमान् आदमी इनमें रमता नहीं। विषयोंमें बुद्धिमान् आदमी प्रीति नहीं करता। जो भक्त और प्रेमी हैं, वे तो बहुत आगे बढ़ जाते हैं। उनकी स्वसुख-कामनाकी सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। उनके जीवनमें तो एकमात्र कामना रह जाती है प्रीतम-सुखकी। वह सुख यदि उनके सौन्दर्य-माधुर्यके द्वारा हमें मिलता है या उन्हें मिलता है तो वह वाञ्छित है। यदि हमारे किसी महान्-से-महान् गुरुतर दुःखसे उन्हें सुख होता है तो वह अपेक्षित है। सारी आकाङ्क्षाएँ एकमात्र प्रीतम-सुखकी आकाङ्क्षामें जाकर विलीन हो जाती हैं, केन्द्रित हो जाती हैं।

वनभूमिमें भगवान् श्यामसुन्दरके भ्रमण करनेकी बातको जानकर श्रीगोपाङ्गनाओंकी आकाङ्क्षा उनके

मुमुख-सौन्दर्यमें जाकर लगी और वहाँ स्वरूप-सौन्दर्यका प्राकट्य हो गया। उन्होंने समझा कि हमारी एकमात्र आकाङ्क्षाके धन, हमारे प्राणोंके प्राण, हमारे हृदयवल्लभ श्रीव्रजेन्द्रनन्दन आज इस व्रजके मार्गको—पथको समुज्ज्वल करते हुए अपने समवयस्क गोपबालक मित्रोंके साथ उनसे घिरे हुए, वेणु बजाते और नाचते हुए, विचित्र-विचित्र भंगिमाएँ करते हुए वनमें प्रवेश कर रहे हैं।

उनका रूप देखा तो दिखायी दिया कि भगवान्‌के मस्तकपर घन-कृष्ण कुंचित केश हैं। घुँघराले काले और घने केश, 'अलकनिकी छबि लखि अलिकुल लाजत' ऐसा कहा है व्रजके संतोंने। ऐसे कृष्णघन और घुँघुराले केशको देखकर ऐसा माल्रम होता है कि मानो हजारों-हजारों भ्रमरावलीका समुदाय वहाँ इकट्ठा हो। उनके उस घन-कृष्ण-स्वरूपको देखकर भ्रमर-कुल भी लज्जित हो रहा है। उन केशोंको ऊपर करके मैयाने जूड़ा बना दिया और बाँध दिया। उस बँधे हुए जूड़ेपर मैया प्रतिदिन श्रृंगार भी करतीं। मणिमुक्ताकी लड़ें और विचित्र-विचित्र प्रकारके आभूषण श्रीकृष्ण खोंसे हुए हैं—चारों ओर लगाये हुए हैं। मैया एक दिन श्रृंगार कर रही थी। आज श्यामसुन्दरके मनमें अपना ऐश्वर्य-माधुर्य प्रकट करनेकी बात उठी। मैयाने बड़ा सुन्दर—बड़ा अच्छा श्रृंगार किया। श्रृंगार जब हो गया, तब मैयाको ऐसा प्रतीत हुआ कि श्रृंगार करनेपर इसका सौन्दर्य तो पहलेसे बिगड़ गया। यह तो पहले ही अच्छा था। मैयाने श्रृंगार उतारा और फिर सारा नया किया। अब तो और भद्दा माल्रम हुआ। बार-बार श्रृंगार करे और बार-बार उतारे। गोपियाँ वहाँ खड़ी थीं। वे मैयाकी इस मनोदशाको देख रही थीं। श्रीकृष्णकी योगमायाने उनमेंसे एक गोपीद्वारा कहलाया कि 'मैया! तू समझती है कि श्रृंगार करके अपने साँवले पूतको सजा देगी तो भले ही खूब सजा, पर मैया! श्रृंगार खोलके तो देख।' मैयाने श्रृंगार उतारकर देखा तो माल्रम हुआ कि ये तो बिना श्रृंगारके ही बहुत सुसज्जित हैं। इनके साथ सजकर श्रृंगार तो स्वयं धन्य होता है। ये तो भूषणोंके भूषण हैं, अलंकारोंके अलंकार हैं, गहनोंके गहने हैं, शोभाकी शोभा हैं, सौन्दर्यके सौन्दर्य हैं, माधुर्यके माधुर्य हैं। सारे माधुर्य, सारी सुषमाएँ इन्हींसे निकली हैं। ये ही इन सबके समुद्र हैं। उन्हें मैया प्रतिदिन सजाती हैं, यह उसका वात्सल्य है। गोपियोंने देखा कि श्रीकृष्णके जूड़ेपर मणि-मुक्तादि-खचित सुन्दर-सुन्दर आभूषण लगे हुए हैं और उसके ऊपर एक बड़ा सुन्दर अर्ध-चन्द्राकार मयूर-पिच्छ सुशोभित है, जैसे नवीन मेघमें इन्द्रधनुष दीख पड़े। बड़ा सुन्दर रूप है। इस प्रकार नटवर-वेषमें श्रीश्यामसुन्दरको देखकर गोपाङ्गनाएँ क्रीडानन्दमें निमग्न हो गयीं, अपने-आपको भूल गयीं।

(क्रमशः)

तुम्हारा कर्तव्य

(रचयिता—श्रीलक्ष्मीप्रसादजी मिस्त्री 'रमा' कविरत्न)

पालो व्रत ब्रह्मचर्य विषै-वासनाएँ त्याग, ईश्वरके भक्त बनो जीवन जो प्यारा है।
उठिये प्रभातकाल रहिये प्रसन्न चित्त, तजो शोक-चिंताएँ जो दुखका पिटारा है॥
कीजिये व्यायाम नित्य भ्रात! शक्ति-अनुसार, नहीं इन नियमों पै किसीका इजारा है।
देखिये सौ शरद और कीजिये सुकर्म 'रमा' सदा स्वस्थ रहना ही कर्तव्य तुम्हारा है॥

जीवन-नौका

(ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

मानव-जीवन तीन प्रकारका है—

(१) समुद्रमें लंगर डालकर निश्चित पड़ी हुई नौकाके समान, (२) समुद्रमें कर्णधारयुक्त निश्चित गन्तव्यकी ओर अग्रसर होनेवाली नौकाके समान और (३) लंगररहित पवन तथा लहरोंद्वारा परिचालित दिशाशून्य इधर-उधर डोलती लक्ष्यरहित नौकाके समान।

प्रथम प्रकारके जीवनमें मनुष्य निज स्वरूपको पहचान लेनेके पश्चात् इस संसारमें प्रकृतिकी लहरोंके थपेड़ोंसे आगे-पीछे परिचालित होता हुआ प्रतीत होता है, परंतु उसने जहाँ लंगर डाल रखा है वहाँसे एक इंच भी हटता नहीं है । इससे इस संसारमें अनेक कर्म करते हुए भी 'मैं आत्मस्वरूप हूँ, नित्य हूँ, मुक्त हूँ, जन्म-मरणरहित हूँ'—इस चेतनामें स्थित रहकर ऐसा साधक सदा मुक्त दशामें रहता है । वह जीवन्मुक्त है । दूसरे प्रकारमें साधक अभी स्थिर नहीं हुआ है, वह गतिशील है, क्रियामें है । उसे समुद्र अर्थात् संसारके प्रवाहों और लहरोंका सामना कर अपने लक्ष्यकी ओर गतिशील होनेका प्रयास करना पड़ता है । यदि वह जप, तप, ध्यान, वैराग्य आदि न रखे तो उसके प्रयास भवसागरकी लहरोंमें बह जायँगे । यह अवस्था मुमुक्षुकी है । उसे सदा जागते रहना चाहिये और अपने लक्ष्य या अन्तिम मंजिलसे जरा भी आगे-पीछे दिशाभ्रमित न हो उसके लिये चुम्बक-यन्त्रके समान सदा दिशा या लक्ष्यकी ओर देखते रहना पड़ेगा ।

तीसरे प्रकारकी नौकाका नाश ही होता है । ये तीसरे प्रकारके मनुष्य जो लक्ष्यहीन हैं और जो अपनी बुद्धिको संसर्गमें आनेवाले व्यक्तियोंके रंगमें रँग डालते हैं, उनका तो नाश ही होता है । दूसरोंके विचारोंको जानकर तथा अपने लक्ष्य मुक्तिकी साधनामें उनमेंसे लाभकारक विचारोंको ग्रहणकर एवं हानिकारक विचारोंका परित्याग कर जो साधक अपना जीवन निर्वाहित करता है, वह सुखी होता है । शास्त्रका कथन है—**'आत्मबुद्धिर्हितार्थाय, परबुद्धिर्विनाशाय, गुरुबुद्धिर्विशिष्यते ।**

इस प्रकार मुमुक्षुका कर्तव्य है कि जबतक अन्तिम लक्ष्यतक न पहुँच जाय, जीवनके व्यवहारोंका त्याग न करे अर्थात् भगवा वस्त्र धारण न करे; क्योंकि उसमें अभिमान है । अरण्य-सेवनकी आवश्यकता नहीं है, परंतु व्यवहार छोड़ना होगा अर्थात् फलकी आकाङ्क्षा न रखकर कर्म करते हुए जीवन-यापन करना होगा ।

मुक्त आत्मा व्यवहार करते हुए भी बन्धनमुक्त है; मात्र व्यवहारसे उसके आत्मानन्दकी अनुभूतिमें विक्षेप होता है । ब्राह्मण नाटकमें चाहे कैसा भी वेश धारण करे, वह ब्राह्मण ही रहेगा । वह वेश धारण करनेके पूर्व ब्राह्मण था, वेश धारण करनेपर भी ब्राह्मण था और वेश उतार देनेपर भी ब्राह्मण बना रहता है । उसी प्रकार आत्मा चाहे किसी भी जीव या प्राणीका आश्रय ले, फिर भी वह मुक्त है । इससे मुमुक्षुको हर परिस्थितिमें प्रसन्न रहना चाहिये । शरीरके प्रारब्ध तो भोगने ही पड़ेंगे । इससे प्रारब्ध भोगते हुए, पाप-पुण्यका क्षय करते हुए और संसारमें राम-राम रटते हुए आनन्दसे विचरण करते रहना चाहिये । इस शरीरका प्रारब्ध घरके साथ ही पूरा होगा अर्थात् या तो शरीर छूट जायगा या घर छूट जायगा । सच्चा सैनिक अपने अधिकारीद्वारा सौंपे गये कार्यको आनन्दपूर्वक करता है, परंतु उसे अमुक काम ही सौंपा जाय, ऐसी अपेक्षा नहीं रखता । **यही हाल आत्माका है ।**

कुछ भी हो, पर आत्माका क्या बिगड़नेवाला है ? हमें क्या हो सकता है ? रबरका साँप शायद फुफकार सके, परंतु काटेगा किस प्रकार ? सारा संसार चाहे रूठ जाय, तो भी आत्मामें कोई अन्तर पड़नेवाला नहीं है। वह आत्मा हमीं हैं । इस ज्ञानको दृढ़ करना है । उसका मूल गीताकी यह वाणी है **'असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ।'** आत्मा असङ्ग है, यह जान लेनेपर साधक भयरहित हो जाता है । 'मैं देह हूँ'—यह विचार भय उत्पन्न करता है और 'मैं असङ्ग आत्मा हूँ'—'यह अभय बनाता है । असङ्ग अर्थात् सङ्गरहित आत्मा और जगत्में कोई सम्बन्ध नहीं है, अतः जगत्से आत्मामें कोई परिवर्तन उत्पन्न नहीं हो सकता । जिस प्रकार सिनेमाके पर्देपर युद्धका दृश्य अङ्कित हो रहा हो, परंतु वह पर्देको भेद नहीं सकता, उसी प्रकार जगत्का आडम्बर आत्माका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता । मैं शरीर नहीं हूँ, परंतु आत्मा हूँ, यह ज्ञान सदा बना रहे । यह जीवन्मुक्त होनेका साधन है । इसलिये यह प्रतीति सदा बनी रहे ।

देह-दृष्टि करनेसे दुःख होता है । 'मैं आत्मा हूँ,' इस ज्ञानसे सदा आनन्द मिलता है । जो भी मिले उसमें प्रसन्न रहनेवालेको सुख मिलता है । अमुक वस्तु मिलनी ही चाहिये, ऐसा आग्रह रखनेवाला दुःखी होता है ।

योगशास्त्रोंमें कहा गया है—

१–स्थिर आसन—सुखपूर्वक बैठ सकें, ऐसे आसनपर धीरे-धीरे अधिक समयतक बैठनेका प्रयत्न करना चाहिये । तीन घंटेतक एक ही आसनपर बैठनेवाला आसनजित् हो जाता है । इससे गर्मी, ठंड, भूख, प्यास, हर्ष-शोक आदि बहुत कम बाधा पहुँचाते हैं ।

२–सत्य-सत्यका अनुष्ठान करना । कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहिये । इससे वाणी अमोघ होती है और जो होनेवाला है, वही कहा जाता है । ऐसा क्यों होता है, इसका कारण अज्ञात है । किसीके घर जानेके लिये यदि कोई आग्रह करे और हम कहें कि रहने दो, अभी वहाँ नहीं जाना है, वह वहाँ नहीं होगा । इतनेपर भी यदि कहनेवाला आग्रह करके ले जाता है तो घरका मालिक उसे मिले ही नहीं । इस प्रकार सत्यकी उपासनासे वचन-सिद्धि मिलती है ।

उपर्युक्त दोनों बातें हमारे निजी अनुभवकी बातें हैं और साधकके लिये आचरणके योग्य हैं ।

३–निष्काम ईश्वर-भजनसे आत्माका साक्षात्कार होता है और बीचमें जो भी बाधाएँ आती हैं उनका नाश भी भजन ही करता है । यह भी सत्य है और अनुभूत प्रयोग है । ये तीनों योगके सूत्र हैं ।

साधकको चाहिये कि वह इन बातोंमें न फँसे । सच्चा उपाय तो ईश्वर-भजन ही है, जप है और सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अक्रोध और भोगमात्रका त्याग इनमें ही सब कुछ है । इसलिये ईश्वरके नामका भलीभाँति जप करना चाहिये । सदा सत्य बोलना चाहिये और किसी भी प्राणीको हमसे कोई दुःख या क्लेश न पहुँचे, इसका ध्यान रखना चाहिये तथा वैसा ही व्यवहार करना चाहिये । सुखकी कामनासे भोगोंके दास बनकर भोग नहीं भोगने चाहिये । जीवित रहनेके लिये ही खाना चाहिये, शरीरकी रक्षाके लिये ही वस्त्र पहनने चाहिये । सेवा करनेके लिये ही जीना चाहिये और आनन्दमें रहना चाहिये । यह है मुमुक्षुकी जीवन-नौकाको परमात्मारूपी किनारेतक ले जानेका सरल और श्रेष्ठ साधन ।

अनुवादक—प्राध्यापक भूदेवप्रसाद हरिलाल पंड्या ।

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[धर्मका सार]

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ॥
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।
(पद्मपुराण, सृष्टि० १९ । ३५५-३५६)

धर्मसर्वस्व अर्थात् पूरा-का-पूरा धर्म थोड़ेमें कह दिया जाय तो वह इतना ही है कि जो बात अपने प्रतिकूल हो, वह दूसरोंके प्रति मत करो । इसमें सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार आ जाता है । जैसे, आपका यह भाव रहता है कि प्रत्येक आदमी मेरी सहायता करे, मेरी रक्षा करे, मुझपर विश्वास करे, मेरे अनुकूल बने और दूसरा कोई भी मेरे प्रतिकूल न रहे, मुझे कोई ठगे नहीं, मेरी कोई हानि न करे, मेरा कोई निरादर न करे, तो इसका अर्थ यह हुआ कि मैं दूसरेकी सहायता करूँ, दूसरेकी रक्षा करूँ, दूसरेपर विश्वास करूँ, दूसरेके अनुकूल बनूँ और किसीके भी प्रतिकूल न रहूँ, किसीको ठगूँ नहीं, किसीकी कोई हानि न करूँ, किसीका निरादर न करूँ, आदि-आदि । इस प्रकार आप स्वयं अनुभवका आदर करें तो आप पूरे धर्मात्मा बन जायँगे ।

मेरी कोई हानि न करे—यह अपने हाथकी बात नहीं है, पर मैं किसीकी हानि न करूँ—यह अपने हाथकी बात है । सब-के-सब मेरी सहायता करें—यह मेरे हाथकी बात नहीं है, पर इस बातसे यह सिद्ध होता है कि मैं सबकी सहायता करूँ । मेरे साथ जिन-जिनका काम पड़े, उनकी सहायता करनेवाला मैं बन जाऊँ । मुझे कोई बुरा न समझे—इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि मैं किसीको बुरा न समझूँ । यह अनुभवसिद्ध बात है । कोई भी मुझे बुरा न समझे—यह अपने हाथकी बात नहीं है, पर मैं किसीको बुरा न समझूँ—यह अपने हाथकी बात है । जो अपने हाथकी बात है, उसे करना ही धर्मका अनुष्ठान है । ऐसा करनेवाला पूरा धर्मात्मा बन जाता है । जो धर्मात्मा होता है, उसे सब चाहते हैं, उसकी सबको आवश्यकता रहती है । आदमी किसे नहीं चाहता ? जो स्वार्थी होता है, मतलबी होता है, दूसरोंकी हानि करता है, उसे कोई नहीं चाहता ; परंतु जो तनसे, मनसे, वचनसे, धनसे, विद्यासे, योग्यतासे, पदसे, अधिकारसे दूसरोंका भला करता है, जिसके हृदयमें सबकी सहायता करनेका, सबको सुख पहुँचानेका भाव है, उसे सब लोग चाहने लगते हैं । जिसे सब लोग चाहते हैं, वह अधिक सुखी रहता है । कारण कि अभी अपने सुखके लिये अकेले हमीं उद्योग कर रहे हैं तो उसमें सुख थोड़ा होगा, पर दूसरे सब-के-सब हमारे सुखके लिये उद्योग करेंगे तो हम सुखी भी अधिक होंगे और लाभ भी अधिक होगा ।

सब-के-सब हमारे अनुकूल कैसे बनें ? कि हम किसीके भी प्रतिकूल न बनें, किसीके भी विरुद्ध काम न करें । अपने स्वार्थके लिये अथवा अभिमानमें आकर हम दूसरेका निरादर कर दें, तिरस्कार कर दें, अपमान कर दें और दूसरेको बुरा समझें तो फिर दूसरा हमारा आदर-सम्मान करे, हमें अच्छा समझे- -इसके योग्य हम नहीं हैं । जबतक हम किसीको बुरा आदमी समझते हैं; तबतक हमें कोई बुरा आदमी न समझे—इस बातके हम हकदार नहीं होते । इसके हकदार हम तभी होते हैं, जब हम किसीको बुरा न समझें । अब कहते हैं कि बुरा कैसे न समझें ? उसने हमारा बुरा किया है, हमारे धनकी हानि की है, हमारा अपमान किया है, हमारी निन्दा की है ! तो इसपर आप थोड़ी गम्भीरतासे

विचार करें। उसने हमारी जो हानि की है, वह होनेवाली थी। हमारी हानि न होनेवाली हो और दूसरा हमारी हानि कर दे—यह तो हो ही नहीं सकता। परमात्माके राज्यमें हमारी जो हानि होनेवाली नहीं थी, उस परमात्माके रहते हुए दूसरा हमारी वह हानि कैसे कर देगा? हमारी तो वही हानि हुई, जो अवश्यम्भावी थी। दूसरा उसमें निमित्त बनकर पापका भागी बन गया; अतः उसपर दया करनी चाहिये। यदि वह निमित्त न बनता तो भी हमारी हानि होती, हमारा अपमान होता। वह स्वयं हमारी हानि करके, हमारा अपमान करके पापका भागी बन गया, तो वह भूला हुआ है। भूले हुएको रास्ता दिखाना हमारा काम है या धक्का देना? कोई खड्डेमें गिरता हो तो उसे बचाना हमारा काम है या उसे धक्का देना? अतः उस बेचारेको बचाओ कि उसने जैसे मेरी हानि की है, वैसे किसी औरकी हानि न कर दे। ऐसा भाव जिसके भीतर होता है, वह धर्मात्मा होता है, महात्मा होता है, श्रेष्ठ पुरुष होता है।

'गीत-गोविन्द'की रचना करनेवाले पण्डित जयदेव एक बड़े अच्छे संत हुए हैं। एक राजा उनपर बहुत भक्ति रखता था और उनका सब प्रबन्ध अपनी ओरसे ही किया करता था। जयदेवजी त्यागी थे और गृहस्थ होते हुए भी 'मुझे कुछ मिल जाय, कोई धन दे दे'—ऐसा नहीं चाहते थे। उनकी स्त्री भी बड़ी विलक्षण पतिव्रता थी; क्योंकि उनका विवाह भगवान्‌ने करवाया था, वे विवाह करना नहीं चाहते थे। एक दिनकी बात है, राजाने उन्हें बहुत-सा धन दिया, लाखों रुपयोंके रत्न दिये। उन्हें लेकर वे वहाँसे रवाना हुए और घरकी ओर चले। रास्तेमें जंगल था। डाकुओंको इस बातका पता लग गया। उन्होंने जंगलमें जयदेवको घेर लिया और उनके पास जो धन था, वह सब छीन लिया। डाकुओंके मनमें आया कि यह राजाका गुरु है, कहीं जीता रह जायगा तो हमलोगोंको पकड़वा देगा। अतः उन्होंने जयदेवके दोनों हाथ काट लिये और उन्हें एक सूखे कुएँमें गिरा दिया। जयदेव कुएँके भीतर पड़े रहे। एक-दो दिनके बाद राजा जंगलमें आया। उसके आदमियोंने पानी लेनेके लिये कुएँमें लोटा डाला तो वे कुएँमेंसे बोले कि 'भाई! ध्यान रखना, मुझे लग न जाय। इसमें जल नहीं है, क्या करते हो?' उन लोगोंने आवाज सुनी तो बोले कि यह आवाज तो पण्डितजीकी है! पण्डितजी यहाँ कैसे आये! उन्होंने राजासे कहा कि 'महाराज! पण्डितजी तो कुएँमेंसे बोल रहे हैं।' राजा वहाँ गया। रस्सा डालकर उन्हें कुएँमेंसे निकाला, तो देखा कि उनके दोनों हाथ कटे हुए हैं। उनसे पूछा गया कि यह कैसे हुआ? तो वे बोले कि 'भाई! देखो, जैसा हमारा प्रारब्ध था, वैसा हो गया।' उनसे बहुत कहा गया कि बताओ तो सही, कौन है, कैसा है; परंतु उन्होंने कुछ नहीं बताया, यही कहा कि हमारे कर्मोंका फल है। राजा उन्हें अपने घरपर ले गये। उनकी मलहम-पट्टी की, दवा की और खिलाने-पिलाने आदि सब तरहसे उनकी सेवा की।

एक दिनकी बात है। जिन्होंने जयदेवके हाथ काटे थे, वे चारों डाकू साधुके वेशमें कहीं जा रहे थे। उन्हें राजाने भी देखा और जयदेवने भी। जयदेवने उन्हें पहचान लिया कि ये वे ही डाकू हैं। उन्होंने राजासे कहा कि 'देखो राजन्! तुम धन लेनेके लिये बहुत आग्रह किया करते हो। यदि धन देना हो तो वे जो चारों आदमी जा रहे हैं, वे मेरे मित्र हैं, उन्हें धन दे दो। मुझे धन दो या मेरे मित्रोंको दो, एक ही बात है।' राजाको आश्चर्य हुआ कि पण्डितजीने कभी आयु-भरमें किसीके प्रति 'आप दे दो' ऐसा नहीं कहा, पर आज इन्होंने कह दिया है! राजाने उन चारों व्यक्तियोंको बुलवाया। वे आये और उन्होंने देखा

कि हाथ कटे हुए पण्डितजी वहाँ बैठे हैं तो उनके प्राण सूखने लगे कि अब कोई 'विपत्ति' आयेगी ! अब ये हमें मरवा देंगे ! राजाने उनके साथ बड़े आदरका बर्ताव किया और उन्हें खजानेमें ले गया । उन्हें सोना, चाँदी, मुहरें आदि खूब दिये । लेनेमें तो उन्होंने खूब धन ले लिया, पर पासमें बोझ अधिक हो गया । अब क्या करें ? कैसे ले जायँ ? तब राजाने अपने आदमियोंसे कहा कि इन्हें पहुँचा दो । धनको सवारीमें रखवाया और सिपाहियोंको साथमें भेज दिया । वे जा रहे थे । रास्तेमें उन सिपाहियोंमें जो बड़ा अधिकारी था, उसके मनमें आया कि पण्डितजी किसीको कभी देनेके लिये कहते ही नहीं और आज देनेके लिये कह दिया तो बात क्या है ? उसने उनसे पूछा कि 'महाराज ! आप बताओ कि आपने पण्डितजीका क्या उपकार किया है ? पण्डितजीके साथ आपका क्या सम्बन्ध है ? आज हमने पण्डितजीके स्वभावसे विरुद्ध बात देखी है । बहुत वर्षोंसे देखता हूँ कि पण्डितजी किसीको ऐसा नहीं कहते कि तुम इसे दे दो, पर आपके लिये ऐसा कहा, तो बात क्या है ?' वे चारों आपसमें एक-दूसरेको देखने लगे, फिर बोले कि 'ये एक दिन मौतके मुँहमें जा रहे थे तो हमने इन्हें मौतसे बचाया था । इससे इनके हाथ ही कटे, नहीं तो गला कट जाता ! उस उपकारका ये बदला चुका रहे हैं ।'

उनकी इतनी बात पृथ्वी सह नहीं सकी । पृथ्वी फट गयी और वे चारों व्यक्ति पृथ्वीमें समा गये ! सिपाहियोंको बड़ी कठिनाई हो गयी कि अब धन कहाँ ले जायँ ! वे तो पृथ्वीमें समा गये ! अब वे वहाँसे लौट पड़े और आकर सब बातें बतायीं । उनकी बात सुनकर पण्डितजी जोर-जोरसे रोने लगे । रोते-रोते आँसू पोंछने लगे तो उनके हाथ पूरे हो गये ।

यह देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या तमाशा है ! हाथ कैसे आ गये ! राजाने सोचा कि वे इनके कोई घनिष्ठ मित्र थे, इसलिये उनके मरनेसे पण्डितजी रोते हैं । उनसे पूछा कि 'महाराज ! बताओ तो सही, बात क्या है ? हमें तो आप उपदेश देते हैं कि शोक नहीं करना चाहिये, चिन्ता नहीं करनी चाहिये, फिर मित्रोंका नाश होनेसे आप क्यों रोते हैं ? शोक क्यों करते हैं ?' तब वे बोले कि 'ये जो चार आदमी थे, इन्होंने ही मुझसे धन छीन लिया और हाथ काट दिया था ।'

राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला—'महाराज, हाथ काटनेवालोंको आपने मित्र कैसे कहा ?' जयदेव बोले—'राजन् ! देखो, एक जबानसे उपदेश देता है और एक क्रियासे उपदेश देता है । क्रियासे उपदेश देनेवाला ऊँचा होता है । मैंने जिन हाथोंसे आपसे धन लिया, रत्न लिये, वे हाथ काट देने चाहिये । यह काम उन्होंने कर दिया और धन भी ले गये । अतः उन्होंने मेरा उपकार किया, मुझपर कृपा की, जिससे मेरा पाप कट गया । इसलिये वे मेरे मित्र हुए । रोया मैं इस बातके लिये कि लोग मुझे संत कहते हैं, अच्छा पुरुष कहते हैं, पण्डित कहते हैं, धर्मात्मा कहते हैं, किंतु मेरे कारण उन बेचारोंके प्राण चले गये ! अतः मैंने भगवान्से रोकर प्रार्थना की कि हे नाथ ! मुझे लोग अच्छा आदमी कहते हैं तो बड़ी भूल करते हैं ! मेरे कारण आज चार आदमी मर गये तो मैं अच्छा कैसे हुआ ? मैं बड़ा दुष्ट हूँ । हे नाथ ! मेरा अपराध क्षमा करो । अब मैं क्या कर सकता हूँ ।'

राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला—'महाराज ! आप अपनेको अपराधी मानते हैं कि चार आदमी मेरे कारण मर गये, तो फिर आपके हाथ कैसे आ गये ?' वे बोले कि 'भगवान् अपने जनके अपराधोंको, पापोंको, अवगुणोंको देखते ही

नहीं ! उन्होंने कृपा की तो हाथ आ गये ।' राजाने कहा—'महाराज ! उन्होंने आपको इतना दुःख दिया तो आपने उन्हें धन क्यों दिलवाया ?' वे बोले—'देखो राजन् ! उन्हें धनका लोभ था और लोभ होनेसे वे और किसीके हाथ काटेंगे; अतः विचार किया कि आप धन देना ही चाहते हैं तो उन्हें इतना धन दे दिया जाय कि जिससे बेचारोंको कभी किसी निर्दोषकी हत्या न करनी पड़े । मैं तो सदोष था, इसलिये मुझे दुःख दे दिया; परंतु वे किसी निर्दोषको दुःख न दे दें, इसलिये मैंने उन्हें भरपेट धन दिलवा दिया ।' राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ ! उसने कहा कि 'आपने मुझे पहले क्या नहीं बताया ?' वे बोले कि 'महाराज ! यदि पहले बताता तो आप उन्हें दण्ड देते । मैं उन्हें दण्ड नहीं दिलाना चाहता था । मैं तो उनकी सहायता करना चाहता था; क्योंकि उन्होंने मेरे पापोंका नाश किया, मुझे क्रियात्मक उपदेश दिया । मैंने तो अपने पापोंका फल भोगा, इसलिये मेरे हाथ कट गये । नहीं तो भगवान्‌के दरबारमें, भगवान्‌के रहते हुए कोई किसीको अनुचित दण्ड दे सकता है ? कोई नहीं दे सकता । यह तो उनका उपकार है कि मेरे पापोंका फल भुगताकर मुझे शुद्ध कर दिया ।'

इस कथासे सिद्ध होता है कि सुख या दुःखको देनेवाला कोई दूसरा नहीं है; कोई दूसरा सुख-दुःख देता है—यह समझना कुबुद्धि है—**'सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा'** (अध्यात्मरामायण २ । ६ । ६) । दुःख तो हमारे प्रारब्धसे मिलता है, पर उसमें कोई निमित्त बन जाता है तो उसपर दया करनी चाहिये कि बेचारा व्यर्थमें ही पापका भागी बन गया ! रामायणमें आता है कि वनवासके लिये जाते समय रात्रिमें श्रीरामजी निषादराज गुहके यहाँ ठहरे । निषादराजने कहा—

कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह ।
जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह ॥
(मानस २ । ९१)

तब लक्ष्मणजीने कहा—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥
(मानस २ । ९१ । २)

अतः दूसरा मुझे दुःख देता है, मेरा अपमान करता है, मेरी निन्दा करता है, मुझे कष्ट पहुँचाता है, मेरी हानि करता है—ऐसा जो विचार आता है, यह कुबुद्धि है, नीची बुद्धि है । वास्तवमें दोष उसका नहीं है, दोष है हमारे पापोंका, हमारे कर्मोंका । इसलिये परमात्माके राज्यमें कोई हमें दुःख दे ही नहीं सकता । हमें जो दुःख मिलता है, वह हमारे पापोंका ही फल है । पापका फल भोगनेसे पाप कट जायगा और हम शुद्ध हो जायँगे । अतः कोई हमारी हानि करता है, अपमान करता है, निन्दा करता है, तिरस्कार करता है, वह हमारे पापोंका नाश कर रहा है—ऐसा समझकर उसका उपकार मानना चाहिये, प्रसन्न होना चाहिये ।

किसीके द्वारा हमें दुःख हुआ तो वह हमारे प्रारब्धका फल है, परंतु यदि हम उस आदमीको खराब समझेंगे, अन्य समझेंगे, उसकी निन्दा करेंगे, तिरस्कार करेंगे, दुःख देंगे, दुख देनेकी भावना करेंगे तो अपना अन्तःकरण मैला हो जायगा, हमारी हानि हो जायगी ! इसलिये संतोंका यह स्वभाव होता है कि दूसरा उनकी बुराई करता है, तो भी वे उसकी भलाई करते हैं—

'उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई ॥'
(मानस ५ । ४० । ४)

ऐसा संत-स्वभाव हमें बनाना चाहिये । अतः कोई दुःख देता है तो उसके प्रति सद्‌भावना रखो, उसे सुख

कैसे मिले—यह भाव रखो । उसमें दुर्भावना करके मनको मैला कर लेना मनुष्यता नहीं है । इसलिये तनसे, मनसे, वचनसे सबका हित करो, किसीको दुःख न दो । जो तन-मन-वचनसे किसीको दुःख नहीं देता, वह इतना शुद्ध हो जाता है कि उसका दर्शन करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं——

तन कर मन कर वचन कर, देत न काहू दुःख ।
तुलसी पातक हरत है, देखत उसको मुक्ख ॥

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

आनन्दकी खोज

(लेखक—मानसमराल पं० श्रीजगेशनारायण शर्मा, भोजपुरी)

रे मानव ! आनन्दकी खोजमें न जाने तू कहाँ-कहाँ भटक रहा है । धक्के खा रहा है । पगले ! तेरा तो निवास ही आनन्दके सागरमें है । तू क्यों व्यर्थमें भटक रहा है ।

आनँद सिन्धु मध्य तव बासा । बिन जाने कत मरसि पिआसा ॥

आनन्द-सागरका वासी होकर भी तू मृग-मरीचिका-के पीछे दौड़ रहा है, यही विडम्बना है । तूने जबसे होश सँभाला है, तबसे दौड़ ही रहा है—कभी धनके पीछे, कभी जनके पीछे, कभी मान-बड़ाईके पीछे तो कभी देहाभिमानके पीछे । नश्वर प्राणी-पदार्थोंके पीछे तेरी यह यात्रा ही तेरे दुःखका कारण है ।

वस्तुतः आनन्दका अथाह सागर तेरे भीतर लहरा रहा है, किंतु तू बेखबरीमें इतना मस्त हो गया है कि अपनी ओर देखता भी नहीं । क्या भगवान्‌के इन वचनोंपर भी तुझे विश्वास नहीं रहा कि तू भी उनका ही अंश है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥
(गीता १५ । ७)

श्रीकृष्णका चिदंश होकर भी तू मन आदि इन्द्रियोंके वशीभूत होकर स्वयंको प्रकृतिका अंश मान बैठा है । चेतन होकर भी तू जडकी ग्रन्थिमें अज्ञानता-वश जकड़ गया है । तेरी यही अज्ञता है, यही मायाका प्रभाव है । यदि इस मायाके पर्देको उठाकर तू अपना स्वरूप देखेगा तो तुझे ज्ञात होगा कि तू ईश्वरका अंश ही है । तू अविनाशी और सहज सुखराशि है——

ईस्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
(मानस ७ । ११७ । २)

तू अपने वास्तविक स्वरूपको पहचान नहीं पाया है, इसलिये दुःखसे अभिभूत है । तेरी जड-चेतनाकी ग्रन्थि सर्वथा असत्य है । इस असत्य जड-चेतन-गँठबन्धनके कारण ही तू दुःख उठा रहा है——

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
(मा० ७ । ११७ । २–३)

गुरु-कृपासे जिस क्षण इस ग्रन्थिका भेदन हो जाय, उसी क्षण यह जीव कृतार्थ हो उठता है । श्रुतिका यही उद्‌घोष है——

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥
(मुण्डक० २ । २ । ९)

अर्थात् उस आत्मतत्त्वको ठीक-ठीक जान लेनेपर हृदयमें पड़ी अविद्याकी गाँठ खुल जाती है । मनके सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और शुभ-अशुभ कर्मोंके बन्धनसे जीव मुक्त होकर परमानन्दको प्राप्त कर निहाल हो उठता है । यही ब्राह्मी स्थिति है । यही भूमाका सुख है । भूमाका आनन्द अर्थात् अक्षय आनन्द । आत्मानन्दकी अनुभूतिके उपरान्त जीवका पुनः संसारी सुख-दुःख स्पर्श नहीं कर पाते ।

आनन्द आगन्तुक नहीं है। उसे कहींसे लाना नहीं है। आत्मा आनन्दस्वरूप ही है, किंतु अनात्म-पदार्थोंका सङ्ग करके जीव दुःख भोग रहा है। यह तो वही बात हुई, जैसे पानीके बीच मछली प्यासी रह जाय—

पानी बिच मीन पियासी रे।
मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी रे॥
आतम ज्ञान बिना सब सूना।
क्या मथुरा, क्या कासी रे॥ (कबीर)

एक दूसरे पदमें भी संत कबीर इसी बातकी पुष्टि करते हैं—

धोबिया जल बिच मरत पिआसा।
जल ही में धोवे जल ही में रोवे
करै धोबिनी की आसा॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
आछा जल है खासा, धोबिया···॥

मायासे मिलकर तू अपना वास्तविक स्वरूप भूल गया है। जो **'सहज सुखराशि'** था, वह दुःखसे बिलख रहा है। आनन्दकी उपलब्धिके लिये तुझे कुछ करना भी नहीं है। यह तो तेरा सहज स्वरूप है। मायाके कारण अपना सहज स्वरूप भूलकर तू झूठे सुख-दुःख-का अभिमानी बन गया है। माया नाना रूप धारण कर ज्ञानदीपको बुझा देती है। ज्ञानदीप बुझनेपर पुनः जीव जन्म-मृत्युके क्लेशचक्रमें फँस जाता है—

तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावइ संसृति क्लेस।
हरिमाया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥
(मा० ७। ११८ (क)

मायासे मुक्त हुआ कि आनन्द-ही-आनन्द है। श्लोकार्धमें कोटि ग्रन्थोंका सार कहनेवाले भगवत्पाद आद्यशंकराचार्य उद्घोष करते हैं कि तू न तो पञ्च-प्राण है और न पञ्चतत्त्व ही। सप्त धातु भी तू नहीं है और जगत्के रिश्ते-नातेके बन्धनसे भी तू परे है। जब जन्म-मृत्युका बन्धन भी तुझे नहीं बाँध सकता, तब भला, जातिका बन्धन तेरे ऊपर कैसे लग सकता है। तू इन सभी बन्धनोंसे मुक्त चिदानन्द शिवरूप ही है—

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुर्व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि।
सदा मे समत्वं न मुक्तिर्न बन्ध-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
(आत्मषट्कम् ६)

दैन्यकी चरम सीमा

फ्रान्सके प्रसिद्ध संत इवोहिलारीका समस्त जीवन दैन्यका प्रतीक था। तेरहवीं शताब्दीके यूरोपके इतिहासमें उनका नाम अमर है। अपने निवासस्थान ब्रिटनी नगरमें वे परम दीन होकर रहनेका यत्न करते थे और अपने-आपको साधारण-से-साधारण मानवके रूपमें प्रकट करते थे। उनके पास कहनेके लिये इस संसारमें अपना कुछ भी नहीं था, फसल कटते ही सारा अन्न गरीबों और दीन-दुखियोंको देकर वे महती प्रसन्नताका अनुभव करते थे।

एक समय वे अपनी कुटीमें ही बैठकर किसी पादरीसे बात कर रहे थे। घरमें केवल एक रोटी बची थी। उस रोटीको उन्होंने गरीबोंमें बाँट देनेका आदेश दिया। पादरीकी इच्छा देखकर आधी रोटी उसे दे दी। वह आश्चर्य-चकित हो गया।

'आप क्या भोजन करेंगे ?' पादरीका प्रश्न था।

'भूख लगनेपर भगवान् जो कुछ भी भेज देंगे, उसीसे ही काम चल जायगा।' संतने शान्तिपूर्ण उत्तर दिया और उनके आदेशसे शेष आधी रोटी गरीबोंको दे दी गयी।

कितना उच्च था उनका दैन्य-वरण !

भगवान् सोमनाथका इतिहास

(लेखक—श्रीजी० पी० नागर)

गुजरातके पश्चिम-दक्षिण छोरपर सागरके तटपर प्रायः बीस हजारकी जनसंख्याका एक छोटा-सा नगर है—'प्रभासपात्तन (पाटन)। सदियोंतक यह नगर भारतके दक्षिणी तटका सबसे बड़ा बन्दरगाह रहा। फारसकी खाड़ी तथा अरब देशोंके जहाज यहाँ आते थे। नगरके अनेक लखपति व्यापारी यहाँसे विदेशोंको समुद्री मार्गसे सामान भेजते थे। यह वैभवशाली नगर पश्चिमी भारतका सर्वाधिक पवित्र तीर्थ भी था। यहाँ भगवान् शिवका स्वयम्भू ज्योतिर्लिङ्ग है। यह भारतके द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों—काशी, केदार, रामेश्वर आदिमें अन्यतम है।

स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डमें सोमनाथकी महिमा निरूपित है। रूढ़ियोंके अनुसार प्रभासपाटनकी चार वस्तुएँ प्रसिद्ध हैं—नदी, नारी, अश्व तथा भगवान् सोमनाथका दर्शन। स्कन्दपुराणके अनुसार दक्ष प्रजापतिकी सत्ताईस पुत्रियाँ थीं। उन सबके पति चन्द्रमा थे। इनमें रोहिणी सर्वाधिक सुन्दरी होनेके कारण चन्द्रमाको अत्यधिक प्रिय थी। चन्द्रमा सदैव उसीके साथ रहते थे। उपेक्षित पत्नियोंने चन्द्रमाकी शिकायत दक्ष प्रजापतिसे की। दक्षके समझानेपर चन्द्रमाने समस्त पत्नियोंके साथ एक-सा व्यवहार करनेका वचन दिया, किंतु उनकी रोहिणीके प्रति आसक्ति पूर्ववत् बनी रही। वे अन्य पत्नियोंकी उपेक्षा करते ही रहे। दुःखी पत्नियाँ पुनः अपने पिता दक्षके पास पहुँचीं और उन्हें अपनी व्यथा-कथा तथा उपेक्षासे परिचित कराया। दक्ष प्रजापति चन्द्रमापर कुपित हो उठे। अत्यधिक क्रोधित होकर उन्होंने चन्द्रमाको शाप दे दिया कि 'तू निस्तेज हो जायगा और क्षयरोगसे पीड़ित रहेगा।'

चन्द्रमा शक्तिहीन तथा निस्तेज होते गये। उनकी कान्ति मलिन हो गयी। संसारमें अँधेरा छाने लगा। चन्द्रमाकी बीमारीसे पशु, पक्षी, मनुष्य तथा देवता सभी चिन्तित हो गये। देवताओंने दक्षसे चन्द्रमाको शापमुक्त करनेका निवेदन किया। दक्षका क्रोध अभीतक शान्त नहीं हुआ था, अतः उन्होंने चन्द्रमाको शापसे मुक्त नहीं किया। निर्बल तथा कान्तिहीन चन्द्रमाने दक्षसे वचन-भङ्ग करनेके लिये क्षमा माँगी। दक्षने उनसे कहा—'तुम प्रभासपाटन जाकर शिवकी आराधना करो। केवल वे ही तुम्हें नीरोग कर सकते हैं।'

चन्द्रमाने प्रभासपाटन जाकर अनेक वर्षोंतक शिवजीकी आराधना की। चन्द्रमाकी तपस्यासे प्रसन्न होकर शिवजीने कहा—'मैं तुम्हें पूर्ण शक्ति तो नहीं दे सकता, किंतु महीनेमें पंद्रह दिनोंतक तुम नित्य बढ़ते रहोगे तथा शेष पंद्रह दिनोंमें तुम्हारी शक्तिका क्रमशः नित्य क्षय होता रहेगा।'

कृतज्ञता प्रकट करने-हेतु चन्द्रमाने प्रभासपाटनमें स्वर्णका मन्दिर निर्माण करनेका संकल्प किया। ब्रह्माजीने प्रभासपाटनमें भूमि कुरेदी तो वहाँ कागजी नींबूके आकारका एक शिवलिङ्ग स्वयं प्रकट हो गया। उस स्थानको दूध तथा मधुसे ढककर उसपर ब्रह्मशिला रखी गयी। उसपर ब्रह्माके निर्देशानुसार चन्द्रमा तथा उनकी प्रिय पत्नी रोहिणीने शिवलिङ्गकी स्थापना की।

भागवत, महाभारत आदिमें अनेक स्थानोंपर प्रभासपाटनका उल्लेख है। यहीं प्राची सरस्वती, कपिला तथा हिरण्या नदियोंका संगम हुआ है। यहीं यदुवंशियोंका पारस्परिक युद्धद्वारा संहार हुआ था। इसके निकट ही

बालकतीर्थ है। इस स्थानपर पेड़के नीचे लेटे हुए श्रीकृष्णके तलुवेमें भीलका प्राणघातक तीर लगा था। यह स्थान 'देहोत्सर्ग' कहलाता है। इसी स्थानके निकट 'बलरामगुफा' है। श्रीकृष्णके भाई शेषावतार बलराम अपना कार्य पूरा कर इसी गुफाद्वारा पाताललोक चले गये थे।

खुदाईसे प्राप्त तथ्योंके आधारपर यह धारणा बनती है कि सोमनाथके प्रथम मन्दिरका निर्माण ईसाकी प्रथम शताब्दीमें हुआ था। इसके बाद सन् ६४० ई०के लगभग उसी स्थानपर दूसरे मन्दिरका निर्माण हुआ; क्योंकि पुराना मन्दिर जीर्ण-शीर्ण हो चुका था। सन् ८४० ई०के लगभग पुराने मन्दिरोंके मलबेके ऊपर ही तीसरे मन्दिरका निर्माण किया गया। यह पहले दोनों मन्दिरोंसे आकारमें बड़ा तथा भव्य था और लाल पत्थरका बना था। मन्दिरमें एक गर्भ-गृह था, जिसके बीच भगवान् सोमनाथकी भव्य मूर्ति थी। उसकी छतोंसे रत्नजटित झाड़ लटक रहे थे। एक स्वर्णमयी जलहरीसे पानीकी बूँदें शिवलिङ्गपर गिरा करती थीं। गर्भगृहके आगे अड़तालीस खम्भोंका रत्नजटित सभा-मण्डप था। खम्भेके प्रत्येक जोड़ीके बीच एक सोनेका घंटा था।

उस समय गुजरातके अधिकतर शासक शैवमतावलम्बी थे। उनका सम्राट् मालवानरेश भी शिव-भक्त था। इन राजाओंने मन्दिरके व्यय-हेतु दस हजार गाँव दान कर दिये थे। एक हजार ब्राह्मण मन्दिरकी सेवा-पूजामें सदैव लगे रहते थे। मूर्तिके स्नानार्थ प्रतिदिन गङ्गाका पवित्र जल लाया जाता था। उस समय सोमनाथका मन्दिर देशके सबसे अधिक पवित्र, वैभवशाली तथा समृद्ध स्थानोंमेंसे एक था।

गजनीके शासक अमीर महमूदको सोमनाथकी प्राचीनता तथा प्रभासपाटनके वैभवकी सूचना मिली। उस समयतक वह भारतपर पंद्रह बार आक्रमण कर चुका था। अफगानिस्तान, सिंध, मुलतान तथा पंजाब उसके साम्राज्यके अङ्ग बन चुके थे। वह नागरकोट तथा मथुराके पवित्र मन्दिरोंको तोड़कर वहाँसे विपुल धनराशि ले गया था। उत्तरी भारतके किसी स्थानसे उसे अधिक धनराशि मिलनेकी आशा नहीं थी, अतः उसने प्रभासपाटनपर आक्रमण करनेका निश्चय किया। वह जानता था कि प्रभासपाटन जूनागढ़के छोटेसे राज्यके अधीन है, जो अनहिलवाड़ा महाराजा भीमका सामन्त है। १८ सितम्बर सन् १०२५ को महमूदने गजनीसे तीस हजार घुड़सवारोंके साथ प्रस्थान किया। प्रत्येक घुड़सवारको सामान तथा पानी ढोनेके लिये दो ऊँट दिये गये। इसके अतिरिक्त तीस हजार अन्य ऊँटोंपर खाद्य सामग्री तथा पानी लादा गया। यह विशाल सेना गजनीसे मुलतानतक एक मासमें पहुँची। वहाँ एक सप्ताह रुककर अमीर जैसलमेर, आबू होता हुआ दिसम्बर सन् १०२५के अन्तिम सप्ताहमें अनहिलवाड़ापाटन पहुँचा। महाराजा भीमने आक्रमणकी सूचना मिलते ही राजधानीको खाली कर दिया। एक सप्ताह रुकनेके बाद सुल्तान प्रभासपाटनकी ओर बढ़ा। भीमकी सेनाने मोढ़ेरापर यवन-सेनाका मार्ग रोकनेका असफल प्रयास किया।

अमीर महमूद ६ जनवरी १०२६ को प्रभासपाटन पहुँचा। उसने किलेको तीन दिशाओंसे घेर लिया। चौथी दिशामें सागर था। किलेकी दीवारें अधिक मजबूत नहीं थीं और न उनके सामनेकी खाई अधिक गहरी थीं; क्योंकि धार्मिक स्थान होनेके कारण नगरपर अभी किसी राजाने आक्रमण नहीं किया था। किलेकी रक्षा जूनागढ़के राव माण्डलिकने की। वह वीरतापूर्वक लड़ा, किंतु ८ जनवरीको महमूदकी सेना किलेके दरवाजोंको तोड़कर अंदर घुस गयी। भीषण

रक्तपात हुआ, जिसमें पचास हजार हिंदू योद्धा मारे गये ! महमूदने प्रभासपाटनके समस्त मन्दिरोंको तोड़ डाला । मन्दिरके रत्नजटित खम्भोंसे स्वर्ण तथा रत्न निकाल लिये गये । कोषागारका समस्त सामान विजेताओंने हस्तगत कर लिया । सोमनाथके मन्दिरको तोड़कर आग लगा दी गयी । सोमनाथकी लूटसे महमूदको बीस लाख स्वर्ण दीनारके मूल्यकी वस्तुएँ मिलीं, जिनका मूल्य सन् १९३१ की दरोंपर १२५ करोड़ रुपया था । इतनी विपुल धनराशि उसे भारतमें किसी भी आक्रमणमें नहीं मिली थी ।

सोमनाथ-विजयके एक सप्ताह बाद ही महमूद प्रभासपाटनसे भाग निकला । वह उस मार्गसे वापस नहीं लौटा, जिससे आया था; क्योंकि अनहिलवाड़ाके महाराजा भीम तथा अन्य राजा उसका मार्ग अवरुद्ध करनेको आगे बढ़ रहे थे । महमूद कच्छकीरन होता हुआ मुल्तान पहुँचा तथा वहाँसे गजनीको चला गया ।

सैनिक दृष्टिकोणसे अमीर महमूदका सोमनाथ-अभियान उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि मानी गयी । मुसलमान-जगत्ने इस विजयको अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना है । बगदादके खलीफाने अमीर महमूद, उसके भाई तथा पुत्रोंको अनेक उपाधियोंसे विभूषित किया । समकालीन तथा बादके मुसलमान लेखकोंकी दृष्टिमें महमूद एक अपराजेय योद्धा तथा कट्टर धर्मावलम्बी बन गया । महमूदकी एकमात्र उपलब्धि राजस्थानके दुर्गम रेगिस्तानको द्रुतगतिसे पारकर अप्रत्याशित आक्रमण करना था । प्रभासपाटन किसी राजाकी राजधानी नहीं था । वह जूनागढ़के माण्डलिक-जैसे साधनहीन राजाके राज्यका एक भाग था; क्योंकि सदियोंसे उसपर कभी आक्रमण नहीं हुआ था, अतः उसका भ्रंशीकरण कठिन नहीं था ।

मन्दिरके ध्वस्त होनेके पाँच वर्षोंके भीतर ही अनहिलवाड़ापाटनके महाराज भीम तथा उनके सम्राट् मालवाके भोजने सोमनाथके चतुर्थ मन्दिरका निर्माण करा दिया । महाराज कुमारपालके शासनकालमें सोमनाथ-के मुख्य पुजारी भव बृहस्पतिने मन्दिरका पुनर्निर्माण करवाया । यह मन्दिर पाँचवाँ मन्दिर कहलाता है । इस मन्दिरको सन् १२९९ में दिल्लीके सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीके सेनानायकोंने पुनः नष्ट कर दिया । खिलजी-साम्राज्यके छिन्न-भिन्न होते ही जूनागढ़के शासक महिपाल तथा उनके पुत्र खंगारने सन् १३२५ से १३५१ की अवधिमें मन्दिरका पुनः निर्माण कर शिवलिङ्गकी पुनः प्रतिष्ठा की । इसके लगभग सौ वर्ष बाद गुजरातके सूबेदार जफर खाँने मन्दिरको पुनः ध्वस्त कर दिया । इसके बाद महमूद बेगड़ाने सन् १४६९ में इस मन्दिरको पूर्ण ध्वस्त कर उसे मस्जिदके रूपमें परिवर्तित कर दिया । जफर खाँ तथा महमूद बेगड़ा दोनोंके पूर्वज हिंदू थे, किंतु इन दोनोंने गुजरातमें अनेक मन्दिरोंको तोड़ा तथा बलपूर्वक हिंदुओंका धर्म-परिवर्तन कराया । बेगड़ाने पूरे प्रभासनगरका नाश कर दिया । इस विनाशके बाद प्रभासपाटनके स्थानपर सूरत दक्षिणी भारतका प्रमुख बन्दरगाह बना ।

महमूद बेगड़ाके विनाशके बीस साल बाद सोमनाथके पवित्र धामपर पुनः पूजा प्रारम्भ हो गयी और वह दो सौ वर्षोंतक चलती रही । सन् १६६९में धर्मान्ध औरंगजेबने देशके अनेक हिंदू-मन्दिरोंको नष्ट करवाया, उनमें यह सोमनाथका मन्दिर भी था । उस मन्दिरमें पूजापर प्रतिबन्ध लगाये जानेके बाद भी पूजा होती रही, अतः सन् १७०६ में बादशाहने मन्दिरको मस्जिदके रूपमें परिवर्तित किये जानेकी आज्ञा दी । मन्दिरपर इस्लामी गुम्बदें और मीनारें बनवायी गयीं तथा भगवान् सोमनाथकी पूजा बंद हो गयी ।

अठारहवीं सदीके मध्यमें गुजरातपर मराठोंका अधिकार हो गया। बड़ौदाकी धर्मात्मा महारानी अहल्याबाई होलकरसे सोमनाथकी दुर्दशा नहीं देखी गयी, भव बृहस्पतिद्वारा निर्मित मन्दिर औरंगजेबकी सन् १७०६ की आज्ञाके अनुपालनमें मस्जिदके रूपमें खड़ा था, उसे मन्दिरका रूप दिया जाना कठिन था, अतः महारानीने पुराने मन्दिरके पास ही सोमनाथके एक नये मन्दिरका निर्माण करवाया।

सन् १९४७ में भारत स्वतन्त्र हो गया, किंतु सोमनाथके भक्तोंको राहत नहीं मिली। प्रभासपाटन जूनागढ़ राज्यका अङ्ग था। जूनागढ़के नवाबने राज्यको पाकिस्तानका भाग बनानेकी घोषणा की। दुःखी जनताने विद्रोह कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप जूनागढ़ तथा प्रभासपाटन भारतके ही अङ्ग बने रहे। भारत-सरकारका पुरातत्त्व-विभाग सोमनाथ-मन्दिरके अवशेषोंको सुरक्षित रखना चाहता था; किंतु सरदार वल्लभ भाई पटेलके सतत प्रयासोंसे भारत-सरकारने सोमनाथ-मन्दिरके पुनर्निर्माणकी अनुमति दी। सन् १९५० तथा १९६६की अवधिमें सातवीं बार सोमनाथके मन्दिरका निर्माण उसी स्थानपर हुआ, जहाँ पूर्वमें पाँच मन्दिर बने थे। महाराज कुमारपालके समयमें भव बृहस्पतिद्वारा निर्मित पाँचवें जीर्ण मन्दिरको गिराकर सोमनाथके नवीन मन्दिरका निर्माण किया गया।

तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसादने ११ मई, १९५१ को इस मन्दिरमें शिवजीके ज्योतिर्लिङ्गकी स्थापना कर प्राणप्रतिष्ठा की। सागर-तटपर स्थित कैलास महामेरु प्रासाद नामक सोमनाथके इस सातवें मन्दिरका शिखर १७५ फुट ऊँचा है तथा उसी स्थानपर स्थित है जहाँ लगभग दो हजार वर्ष पूर्व प्रथम मन्दिरका निर्माण किया गया था। सोमनाथका मन्दिर हिंदूधर्मकी विधर्मी शक्तियोंके विनाशकारी प्रभावोंसे अक्षत रहनेकी क्षमताका प्रतीक है।

ईसाकी प्रथम शताब्दीसे तेरहवीं शताब्दीतक सोमनाथके मुख्य पुजारी पाशुपत-मतावलम्बी ही हुआ करते थे। इस मतके प्रवर्तक महाराज लकुलेशका जन्म ईसाके बाद दूसरी शताब्दीमें बड़ौदाके ही निकट हुआ था। लकुलेशने प्रभासपाटनमें ही रहकर पाशुपत-सूत्रोंकी रचना की थी। नव्यन्याय तथा वैशेषिकसूत्र-भाष्य भी पाशुपत-साहित्यके अङ्ग माने जाते हैं। लकुलेशका पाशुपत-सम्प्रदाय भेदाभेदवाद है। लकुलेशके समयके तेरहवीं शताब्दीतक प्रभासपाटन पाशुपत-मतका अखिल भारतीय केन्द्र रहा। इस मतके अन्तिम महान् आचार्य त्रिपुरान्तक थे, जिन्होंने तेरहवीं शताब्दीके अन्तमें प्रभासपाटनमें पाँच मन्दिरोंका निर्माण करवाया तथा सोमनाथ-मन्दिरके मुख्य द्वारपर तोरण बनवाया।

प्रत्येक वर्ष आश्विन शुक्ल १५से कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा तक प्रभासपाटनमें यह मेला लगता है। मेला भगवान् शिवके पुत्र कार्तिकेयके जन्मोत्सवके उपलक्षमें लगता है। इस मेलेको 'त्रिपुरान्तक-मेला' भी कहते हैं। इस अवसरपर एक लाखसे भी अधिक तीर्थयात्री त्रिवेणी-संगमपर स्नान कर सोमनाथकी पूजा करते हैं।

देहोत्सर्ग-तीर्थके समीप श्रीवल्लभाचार्यने श्रीमद्भागवतपर प्रवचन दिया था। इस स्थानके निकट सोमनाथ-ट्रस्टने एक भव्य गीता-मन्दिर बनवाया है, जिसके अठारह खम्भोंमेंसे प्रत्येकपर गीताका एक अध्याय अङ्कित है।

व्यावहारिक जीवनमें नाम, रूप, स्थापना और प्रतीक

(लेखक—श्रीविश्वनाथजी पाठक, एम्० ए० साहित्याचार्य, प्राकृताचार्य)

[गताङ्क पृष्ठ ८९५ से आगे]

[प्रथम लेखाङ्कमें विद्वान् लेखकने अनेक युक्तियों एवं उदाहरणोंसे 'नाम' और 'रूप'को वास्तविक न होकर आरोपित सिद्ध किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया है कि इनकी व्यावहारिक सत्ता अनिवार्य है। अब इस लेखाङ्कमें 'स्थापना' और 'प्रतीक'का रूप देखिये।—सम्पादक]

(२)

इस प्रकार मानवमें कृत्रिम रूप-निर्माणकी प्रवृत्ति नैसर्गिक है। वह अपनी रचनामें मूर्त वस्तुओंके रूपोंका अनुकरण ही नहीं करता अपितु अवस्तु और अमूर्त सत्ताओंकी भी काल्पनिक आकृतियाँ गढ़ लेता है। इतना ही नहीं, अपनी इच्छाशक्तिसे किसी नाम-रूपमय द्रव्यका उससे भिन्न अन्य द्रव्यके साथ अभेद स्थापित करना भी मानवका स्वभावज गुण है। इस प्रक्रियाको जैनशास्त्रोंमें 'स्थापन' कहते हैं।[१] स्थापनाके लिये रूप-साम्य अनिवार्य नहीं है; क्योंकि अमूर्त द्रव्योंकी भी स्थापना मूर्त द्रव्यरूपमें की जाती है। प्रायः अयथार्थ ज्ञान भ्रामक होता है, किंतु स्थापना अयथार्थ होनेपर भी भ्रमसे भिन्न है। भ्रममें रज्जुकी प्रतीति होकर सर्पकी प्रतीति होती है, किंतु स्थापनामें प्रतीति रज्जुकी ही होती है, स्थापक उसे आग्रहपूर्वक 'सर्प' मान लेता है। जैनोंने तत्त्वनिरूपणमें स्थापनाको आवश्यक निक्षेप माना है।

इस स्थापन-प्रवृत्तिका उदय मनुष्यमें शैशवसे ही होता है। छोटे बच्चे खेलमें अपने आगे प्रायः कुछ पत्तियाँ रख लेते हैं और परस्पर कहते हैं—'यह हमारा घोड़ा है, यह हमारा हाथी है और यह हमारा ऊँट है।' बालिकाओंमें गुड़ियों और गुड्डोंके विवाहका खेल प्रसिद्ध है। कभी-कभी एक बालक अपने साथीके कंधेपर कूदकर चढ़ जाता है और उसे हाथों और कोड़ोंसे मार-मारकर कहता है—'चल बे घोड़े ! चल !' अबोध बालक खूब जानता है कि यह हमारा साथी है, घोड़ा नहीं, फिर भी उसपर घोड़ेका आरोप कर क्षणभरके लिये आनन्दसे पुलकित हो उठता है। कबड्डीके खेलमें आपने देखा होगा, जब एक दलका खिलाड़ी अन्य दलके खिलाड़ीको छूकर भाग आता है तब छुआ हुआ खिलाड़ी मृत घोषित कर दिया जाता है। यद्यपि वह साँसें लेता है, चलता-फिरता है और बातें भी करता रहता है, फिर भी उस जीवितको मृतक कहनेपर किसी भी पक्षसे विरोध नहीं होता।

यही बालप्रवृत्ति धीरे-धीरे विकसित होकर जीवनके विविध क्षेत्रोंमें हमारी सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक, साहित्यिक और राजनीतिक गतिविधियोंको पूर्णतया प्रभावित करती रहती है। नदी, पर्वत, वृक्ष, नगर आदिमें पवित्रताकी स्थापनासे तीर्थोंका उदय होता है। पवित्र तीर्थस्थान भी अन्य स्थानोंके समान नितान्त भौतिक हैं, इन्हें आध्यात्मिक पवित्रता शास्त्रीय स्थापनाने ही प्रदान की है। मुर्देको लोग छूना भी नहीं पसंद करते। जो स्वयं मर चुका है, वह दूसरेकी इच्छा क्या पूरी करेगा ? फिर भी पीरोंकी हड्डियोंपर बनी मजारोंपर दुआएँ माँगनेके लिये मेले लगते हैं और बड़ी-बड़ी मनौतियाँ मानी जाती हैं। इसके मूलमें स्थापना नहीं तो और क्या है ?

१-आहिदणामस्स अण्णस्स सोयमिदि ठ्ठावणा णाम। (छक्खंडागम, धवला पु० २०)

स्थापनामें विषयी और विषय—दोनों अमूर्त भी हो सकते हैं। निरर्थक ध्वनियोंपर विविध अर्थोंका आरोप इसका उदाहरण है। सीटीकी ध्वनि अमूर्त है। उसके द्वारा अनेक अर्थ संकेतित होते हैं। कभी वह खेलके समाप्त हो जानेका अर्थ देती है तो कभी खेल प्रारम्भ होनेका और कभी उसीसे दस्युओंको आसन्न-संकटकी सूचना मिलती है।

बीजगणितमें जो किसी भी दशामें धन नहीं हो सकता उसे भी धन मान लेनेकी निम्नलिखित पद्धति प्रचलित है—'मान लिया रामके पास अ रुपये थे।' अ रुपया कहीं नहीं होता, किंतु इस मिथ्या कल्पनाके आधारपर बड़े-बड़े कठिन प्रश्न हल किये जाते हैं।

भूगोलमें भी एक बहुत बड़ा संकेत झूठ चलता है। आपने भौगोलिक मानचित्रोंके नीचे निम्नलिखित रीतिसे लिखा हुआ पैमाना अवश्य देखा होगा—एक मि०म०= १०० कि०मी०। एक मिलीमीटर सौ किलोमीटरके बराबर कभी भी नहीं हो सकता, इसे मूर्ख भी समझता है, तब क्या भूगोलके विद्वान् प्राध्यापक नहीं जानते होंगे? मैं तो यही समझता हूँ कि वे असत्यसे सत्यकी ओर चलकर 'असतो मा सद्गमय'की वैदिक प्रार्थनाको छात्रोंके बीचमें चरितार्थ कर देते हैं। सौ रुपयेका नोट वस्तुतः कागजका छोटा-सा टुकड़ा है, जिसका मूल्य एक कौड़ीके बराबर भी नहीं है, परंतु उसी कागजके टुकड़ेके बदले बाजारसे सौ रुपयेके सामान मिल जाते हैं।

स्थापना आहार्य बुद्धिका परिणाम है। मिथ्या होनेपर भी उसकी उपेक्षा सम्भव नहीं। दिशाको ही ले लीजिये। वह अपेक्षा-बुद्धिसे उत्पन्न होती है, अतः उसके अस्तित्वके लिये कम-से-कम दो वस्तुओंकी सत्ता अनिवार्य है। हम जिसे पूर्व कहते हैं, उसे ही दूसरा पश्चिम कहता है। तीसरा उत्तर कहता है तो चौथा उसीको दक्षिण कहता है। अपेक्षित वस्तुओंका अभाव हो जानेपर उनके मध्य स्थित कल्पित दिशा तिरोहित हो जाती है। इस प्रकार दिशाकी कोई निश्चित सीमा नहीं है, फिर भी उस अनिश्चित असत् बुद्धि-विकल्पकी स्वीकृतिके बिना हमारा काम भी नहीं चल सकता। अतः पारमार्थिक सत्ताकी अन्धश्रद्धासे विवेकहीन होकर व्यावहारिक सत्ताकी उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिये। आकृति, जाति और संहननमें ऐक्य होनेपर भी सभी स्त्रियोंके साथ समान व्यवहार नहीं होता। कोई माताके रूपमें पूज्य है, कोई प्रेयसीके रूपमें प्रणयकी अधिकारिणी है और कोई पुत्रीके रूपमें वात्सल्य-भाजन है। स्थापना असत् होनेपर भी व्यवहारमें सत्यसे कम महत्त्व नहीं रखती। विवर्तवादी वेदान्तियोंने भी व्यावहारिक सत्ताका कभी अपलाप नहीं किया है।

जैन-शास्त्रोंमें सत्यके दस भेद उल्लिखित हैं, जिनमें नाम और रूपके साथ स्थापनाकी भी व्यावहारिक सत्यता स्वीकृत की गयी है।* जो वस्तु जिस रूपमें नहीं है उसे उस रूपमें (प्रयोजनवश) मान लेना स्थापना है। उसके मूलमें समष्टि या व्यष्टिकी इच्छा अनिवार्यरूपसे रहती है। जिस द्रव्यपर किसी भिन्न द्रव्यकी स्थापना की जाती है, वह दूसरे द्रव्यका प्रतीक बन जाता है और उसमें व्यवहार-सम्पादनकी विलक्षण क्षमता आ जाती है।

मङ्गलका कोई आकार नहीं है। आम्रपल्लव, पूर्ण कुम्भ, चतुष्क, दधि, दूर्वा, हरिद्रा, पुष्प, अक्षत, गोरोचन, कस्तूरी आदि मङ्गल-प्रतीक हैं; क्योंकि इनमें मङ्गलकी स्थापना है। किसी श्रद्धेयके गलेमें पुष्प-माला डाल देनेपर उसे क्या मिल जाता है? उसकी अपेक्षा यदि

* दशविधः खलु सत्यसद्भावः—नाम-रूप-स्थापना-प्रतीत्य-संवृति-संयोजन-जनपद-देश-भाव-समयसत्यभेदेन।
([illegible], संतप्ररूपणानुयोगद्वार पृ० ११८)

पेटभर लड्डू खिला दें तो जिह्वा भी तृप्त हो जाती है। किंतु नहीं, पुष्प हमारी श्रद्धा, भक्ति और पूजाका प्रतीक है। भले ही गलेमें पुष्पमाला पड़नेपर पेट न भरता हो, किंतु हृदय कृतज्ञतासे अवश्य पुलकित हो उठता है। पुष्पोंमें भी कतिपय विशेष पुष्प ही माङ्गल्य हैं, कोंहड़ा, लौकी और तरोईके पुष्प नहीं। स्वस्तिक-चिह्नमें कौन-सा मङ्गल मूर्तिमान् होकर बैठा है, पर उसे गृहभित्तियों-पर चित्रित कर हम संतुष्ट हो जाते हैं।

मुसलमानोंका ताजिया क्या है ? प्रतीक ही तो है। प्रतीक स्वयं सत्य न होनेपर भी सत्यका प्रत्यायक होता है। काले झंडेका अर्थ किसीका अपमान नहीं है। लाल झंडीका अर्थ रेलगाड़ीका, रुकना नहीं और हरी झंडीका भी अर्थ रेलगाड़ीका चलना नहीं है, किंतु काली झंडी दिखानेवालोंपर लाठियाँ गिरती हैं, लाल झंडी दिखानेपर रेलगाड़ी रुक जाती है और हरी झंडी दिखानेपर रेलगाड़ी चल पड़ती है। ये सभी सांकेतिक अर्थ समुदाय-विशेषद्वारा स्थापित एवं आरोपित होते हैं।

हम राष्ट्र-ध्वजको झुककर प्रणाम करते हैं। वह एक साधारण चैल-खण्ड होनेपर भी राष्ट्रिय एकता, निष्ठा और प्रतिष्ठाका प्रतीक है। गाँवका एक साधारण एवं दुर्बल व्यक्ति भी जिस स्थापनाका बल पाकर कुछ दिनोंके लिये राष्ट्रपति या प्रधान मन्त्रीके रूपमें अपरिमित प्रतिष्ठा और शक्ति-पुञ्जका प्रतीक बन जाता है, उसीके अभावमें 'पुनर्मूषको भव' की उक्तिको चरितार्थ करने लगता है। प्राचीन पंचायतोंके पंचोंके पास कोई सेना नहीं रहती थी, परंतु उनके न्यायिक निर्णय ब्रह्मवाक्य बन जाते थे।

जैसे वृक्षका मूल छिन्न हो जानेपर उसकी शाखाओंमें हरियाली नहीं रह जाती, वैसे ही स्थापना समाप्त हो जानेपर प्रतीक भी मर जाते हैं। ऋग्वेदका **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते'** इत्यादि मन्त्र प्रतीक-शैलीका मनोरम उदाहरण है। सुपर्णका अभिधेय पक्षी है और वृक्षका पेड़; परंतु ये शब्द मन्त्रमें जीव, परमात्मा और जगत्के अर्थमें प्रयुक्त हैं। साहित्यमें रूपकातिशयोक्ति और अन्योक्ति अलंकारोंके आधार भी प्रतीक ही हैं। कबीरने **'साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप'** कहकर सत्यको सर्वश्रेष्ठ तप और झूठको सबसे बड़ा पाप घोषित किया था, किंतु वे भी व्यवहारमें प्रतीकोंकी असत् परिधिको लाँघ नहीं सके।

लगी समुंदर आगि, नदियाँ जरि कोएला भईं।
कहै कबीरा जागि, मछली रूखें चढ़ि गईं॥

उपर्युक्त सोरठेमें यथार्थ दृष्टिसे बिल्कुल मिथ्या एवं असम्भव बात कही गयी। समुद्रमें आग कभी नहीं लग सकती। यदि लग भी जाय तो उसीको पहले जलायेगी। यहाँ तो आग लगी है समुद्रमें और जल-कर कोयला हो रही हैं नदियाँ। समुद्रका क्या हुआ, इसका पता ही नहीं। भला नदियाँ कोई काष्ठ हैं जो कोयला हो जायँगी ? भाप भले ही हो जायँ। इसपर भी आश्चर्य देखिये, जो विचित्र आग समुद्रमें लगती है और कूदकर नदियोंको जला डालती है, वह अपने ही ईंधन वृक्षोंका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकी, तभी तो उनपर मछलियाँ चढ़कर बच गयीं। प्रतीकोंकी प्रामाणिकताको स्वीकार किये बिना यह सोरठा उन्मत्त-प्रलाप बन जायगा।

रामलीलाओं और नाटकोंमें जब कृत्रिम रावण सीताको हर लेता है, तब कृत्रिम राम विलाप करने लगते हैं। वहाँ हरण भी काल्पनिक है, विलाप भी काल्पनिक है, दर्शक इस तथ्यको जानते भी हैं, परंतु उनकी आँखें सजल हो उठती हैं। यह है प्रतीककी महिमा !

इस प्रकार स्पष्ट है कि जीवनका कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं, जहाँ कल्पित नाम, रूप, स्थापना और प्रतीकका अधिकार न हो। किसी भी क्षेत्रमें वे प्रतिबद्ध नहीं हैं।

कहीं भी उनके विरोधका स्वर सुनायी नहीं देता। तब पता नहीं कि क्यों कुछ लोग उपासनामें ही प्रतीक (मूर्ति)का विरोध करते हैं। निराकार वर्णों, गुणों, क्रियाओं और संख्याओंकी कल्पित आकृतियाँ गढ़नेपर कोई पाप नहीं लगता। गणित और भूगोलमें असत्य बातोंको कहते जिह्वा कटकर नहीं गिर जाती और मूल्य-हीन कागजके टुकड़ेको बहुमूल्य मान लेनेपर भी बुद्धिका दिवाला नहीं निकलता। केवल आराध्यकी प्रतिमा बना लेनेपर हम अपराधी हो जाते हैं! बलिहारी है ऐसी समझकी! (समाप्त)

भागवतीय प्रवचन—१२

विपत्तिका वरदान

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

शुकदेवजी परीक्षित्‌को सावधान करते हुए कहते हैं—राजन्। अश्वत्थामाने सोचा 'पाण्डवोंने मेरा अपमान किया है। मैं इसका बदला लूँगा। अपना पराक्रम दिखाऊँगा। उत्तराके पेटमें गर्भ है और वह पाण्डवोंका उत्तराधिकारी है। उसका नाश होनेपर पाण्डवोंके वंशका नाश हो जायगा।' यह सोचकर उसने उस गर्भपर ब्रह्मास्त्र छोड़ा। उत्तरा व्याकुल हुई। हरिस्मरण करते, हरि-आश्रय लेते ही तो भगवान् मार्ग दिखाते हैं। ईश्वर-स्मरण बार-बार किया जाय तो भाव शुद्ध होते हैं। ब्रह्मास्त्र उत्तराके शरीरको जलाने लगा। उत्तरा दौड़ती हुई श्रीकृष्णके पास आयी। श्रीकृष्ण उत्तराके गर्भमें जाकर परीक्षित्‌का रक्षण करते हैं। जीवमात्र परीक्षित् है। सबकी गर्भमें कौन रक्षा करता है? जीवमात्रका रक्षण गर्भमें ईश्वर करता है। बाहर आनेपर भी जीवमात्रकी रक्षा भगवान् ही करता है। भगवान् केवल उत्तराके गर्भवाले परीक्षित्‌का रक्षण करते हों, ऐसा नहीं है। ये तो जीवमात्रका रक्षण करते हैं। गर्भमें तो जीवात्मा हाथ जोड़कर भगवान्‌को सतत नमन करता है और बाहर आनेके बाद दोनों हाथ छूट जानेसे उसका नमन भी छूट जाता है। प्रभुको वह भूल जाता है। बाल्यावस्थामें भी जीवनकी रक्षा परमात्मा ही करता है। युवावस्थामें मानव उन्हें भूल जाता है और अकड़कर चलता है। कहता है कि मैं धर्मको नहीं मानता, ईश्वरको नहीं मानता।

द्रौपदीने उत्तराको सीख दी थी कि जीवनमें दुःखका प्रसङ्ग आनेपर ठाकुरजीके चरणोंका आश्रय लेना। दुःखके प्रसङ्गके समय श्रीकृष्णकी शरणमें जाना। कन्हैया दयामय है। वह तेरी अवश्य सहायता करेगा।

अपने दुःखकी कथा द्वारिकानाथके सिवा अन्य किसीसे कभी मत कहो।

उत्तराने देखा था कि अपनी सासजी प्रतिदिन द्वारिकानाथको रिझाती हैं।

बालक शीघ्र अनुकरण करता है, अतः उसके सामने कभी पाप मत करो।

उत्तरा रक्षाके लिये पाण्डवोंके पास नहीं, किंतु परमात्माके पास गयी।

माताके पेटमें ही परीक्षित्‌को परमात्माके दर्शन हुए थे, अतः वे उत्तम श्रोता हैं।

भगवान् किसीके गर्भमें नहीं जाते। परमात्माकी लीला अप्राकृत है।

देवकीके पेटमें प्रभु गये नहीं थे। देवकीको भास (भ्रान्ति) कराया था कि वे पेटमें गये थे, किंतु आज आवश्यकता आ पड़ी थी। आज भक्तकी रक्षा करनी थी। इसलिये परमात्माने गर्भमें जाकर रक्षा की।

परम आश्चर्य हुआ है।

श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्रसे ब्रह्मास्त्रका निवारण किया। परीक्षित्की रक्षा करनेके बाद वे द्वारिका पधारनेको तैयार हुए।

कुन्ती मर्यादा-भक्ति है, साधन-भक्ति है।

यशोदा पुष्टि-भक्ति है। यशोदाका सारा व्यवहार भक्तिरूप था। प्रेमलक्षणा भक्तिमें, व्यवहार और भक्तिमें भेद नहीं रहता। वैष्णवकी सारी क्रियाएँ भक्ति ही बन जाती हैं।

सर्वप्रथम मर्यादा-भक्ति आती है, उसके बाद पुष्टि-भक्ति। मर्यादा-भक्ति साधन है, इसलिये वह आरम्भमें आती है। पुष्टि-भक्ति साध्य है, अतः वह अन्तमें आती है।

भागवतमें नवम स्कन्धतक साधन-भक्तिका वर्णन है। दशम स्कन्धमें साध्य-भक्तिका वर्णन है। साध्य-भक्ति प्रभुको बाँधती हैं। पुष्टि-भक्ति प्रभुको बाँधेगी। उसकी कथा भागवतके अन्तमें आती है। प्रत्येकके व्यवहारको भक्तिरूप बनाये, वह पुष्टि-भक्ति है।

भक्तिमार्गमें भगवद्वियोग सहन नहीं होता। भक्तिमें भगवान्का विरह सहन नहीं होता। वैष्णव वह है, जो प्रभुके विरहमें जलता है।

द्वारिकानाथ द्वारिका जानेको तैयार हुए। कुन्तीका चित्त भर आया। उनकी अभिलाषा है कि चौबीसों घंटेमें श्रीकृष्णको निहारा करूँ। मेरे श्रीकृष्ण मुझसे कहीं दूर न जायँ। जिस मार्गसे भगवान्का रथ जानेवाला था, कुन्ती वहीं आयीं और हाथ जोड़कर रास्तेमें खड़ी हो गयीं।

प्रभुने दारुक सारथिसे रथ रुकवाया और कुन्तीसे कहा—'बुआजी! आप मार्गमें क्यों खड़ी हैं?' वे रथसे नीचे उतरे। कुन्तीजीने वन्दन किया।

वन्दनसे प्रभु बन्धनमें आते हैं। वन्दनके समय अपने सारे पापोंको याद करो। हृदय दीन, नम्र होगा।

सूतजी वर्णन करते हैं। नियम तो ऐसा है कि प्रतिदिन भगवान् कुन्तीजीको वन्दन करते हैं, किंतु आज कुन्ती भगवान्को वन्दन कर रही है। भगवान्ने कहा कि 'यह आप क्या कर रही हैं। मैं तो आपका भतीजा हूँ। आप मुझे प्रणाम करें—यह शोभास्पद नहीं है।'

कुन्ती कहती हैं कि 'मैं आजतक आपको अपना भतीजा मानती थी, किंतु आज समझमें आया कि आप ईश्वर हैं। योगीलोग आपका ही ध्यान करते हैं। आप सबके पिता हैं।'

कुन्तीकी भक्ति दास्यमिश्रित वात्सल्य-भक्ति है। हनुमान्जीकी भक्ति दास्य-भक्ति है। दास्य-भक्तिके आचार्य हनुमान्जी हैं। दास्यभावसे हृदय दीन बनता है। अपने स्वामीको देखनेके लिये मुझमें साहस नहीं है। मैं तो उनका दास हूँ। दास्य-भक्ति अधिकारी महात्माको प्राप्त होती है। दास्य-भक्तिमें दृष्टि चरणोंमें स्थिर करनी होती है। बिना भावके भक्ति सिद्ध नहीं हो सकती। ईश्वरके साथ कुछ भी सम्बन्ध जुड़ना चाहिये। मर्यादा-भक्तिमें दास्यभाव मुख्य है।

कुन्ती वात्सल्यभावसे श्रीकृष्णका मुख निहारती हैं। मेरे भाईका पुत्र, यही वात्सल्यभाव हुआ। मेरे भगवान् हैं, यह दास्यभाव भी है। चरण-दर्शनसे तृप्ति नहीं हुई तो मुख देख रही हैं। कुन्ती भगवान्की स्तुति करती हैं—

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये॥

(भा० १।८।२२)

जिनकी नाभिसे ब्रह्माका जन्मस्थान कमल प्रकट हुआ है, जिन्होंने कमलोंकी माला धारण की है, जिनके

नेत्र कमलके समान विशाल और कोमल हैं और जिनके चरणोंमें कमलचिह्न हैं, ऐसे आपको बार-बार वन्दन है।

भगवान्‌की स्तुति प्रतिदिन तीन बार करो—प्रातः, दोपहर और रातको सोनेसे पहले। इसके सिवा सुख, दुःख और अन्तकालमें भी स्तुति करो। अर्जुन दुःखमें स्तुति करता है, कुन्ती सुखमें स्तुति करती हैं और भीष्म अन्तकालमें स्तुति करते हैं।

सुखावसानमें, दुःखावसानमें स्तुति करो।

कुन्ती कहती हैं—'प्रभुने हमें सुखी किया है। हमें कैसे-कैसे संकटोंसे उबारा है।' भगवान्‌के उपकारोंको वे स्मरण कर रही हैं। वे भगवान्‌के उपकारोंको भूली नहीं हैं। मैं विधवा हुई, तब मेरी संतान नन्हीं-सी थी। उस समय भी आपने ही मेरी रक्षा की थी।

सामान्य मनुष्य अतिसुखमें भगवान्‌को भूल जाता है। जीवमात्रपर भगवान् अनेक उपकार करते हैं, किंतु वह सब कुछ भूल जाता है। परमात्माके उपकार भूलने न चाहिये। हम जब बीमारीसे अच्छे होते हैं, तब अमुक औषधसे बीमारी टली, ऐसा मानते हैं। अमुक डॉक्टरने हमें बचाया, ऐसा मानते हैं, किंतु भगवान्‌ने ही बचाया है, ऐसा नहीं मानते। भगवान्‌का उपकार नहीं मानते। विचार करो कि डॉक्टरकी दवा और सूईमें बचानेकी शक्ति कुछ है भी क्या? ना, ना, बचानेवाला तो कोई और ही है। डॉक्टरके पास जो बचानेकी शक्ति होती तो उसके घरसे कभी अन्तिमयात्रा निकलती ही नहीं।

बिना जलके नदीकी शोभा नहीं है, प्राणके बिना शरीर नहीं शोभा देता, कुंकुमका टीका न हो तो सौभाग्यवती स्त्री नहीं सुहाती। इसी प्रकार पाण्डव भी आपके बिना नहीं सुहाते। नाथ! आपसे ही हम सुखी हैं।

गोपीगीतमें गोपियाँ भी भगवान्‌के उपकारका स्मरण करती हैं —'**विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्।**' यमुनाजीके विषमय जलसे होनेवाली मृत्युसे, अजगरके रूपमें खा जानेवाले अघासुरसे, इंद्रकी वर्षा, आँधी, बिजली, दावानल आदिसे आपने हमारी रक्षा की है।

कुन्तीजी याद करती हैं कि जब भीमको दुर्योधनने विषमिश्रित लड्डू खिलाये थे, उस समय भी आपने ही इसकी रक्षा की थी। लाक्षागृहसे भी हमें बचाया था। आपके उपकार अनन्त हैं। उनका बदला हम कभी चुका नहीं सकतीं।

मेरी द्रौपदीको दुःशासन सभामें खींच लाया। उस समय दुर्योधनने कहा कि द्रौपदी अपनी दासी है। उसे निर्वस्त्र करो। दुःशासन वस्त्र खींचने लगा, किंतु भगवान् जिसे ढकता है उसे कौन उघाड़ सकता है। दुःशासन थक गया। लोग भी आश्चर्यमें डूब गये। सब सोचने लगे—

> सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
> सारी ही की नारी है कि नारीकी ही सारी है।

जीव ईश्वरको कुछ भी नहीं दे सकता। जगत्‌का सब कुछ ईश्वरका ही है। भगवान् कहते हैं कि जो मेरा है वही मुझे देनेमें क्या बड़ी बात हुई!

प्रतिदिन तीन बार भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ। मुझपर आपके अनन्त उपकार हैं।' कुन्ती कहती हैं कि आपके उपकारका बदला मैं किस तरह चुकाऊँगी? मैं आपको बार-बार वन्दन करती हूँ।

नाथ! हमारा त्याग न करो। आप द्वारका जा रहे हैं, किंतु एक वरदान माँगनेकी मेरी इच्छा है। वरदान देकर आप चाहे चले जाइये। कुन्ती-सा वर

कभी दुनियामें आजतक किसीने माँगा नहीं है और माँगेगा भी नहीं ।

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥
(भा० १ । ८ । २५)

'हे जगद्गुरो ! हमारे जीवनमें प्रतिक्षण विपदाएँ आती रहें; क्योंकि विपदवस्थामें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन होते रहते हैं और आपके दर्शन होनेपर जन्म-मृत्युके फेरे टल जाते हैं ।'

दुःखमें ही मनुष्यको सयानापन आता है । दुःखमें ही प्रभुके पास जानेका मन होता है । विपत्तिमें ही उनका स्मरण होता है । विपत्ति ही सच्ची सम्पत्ति है ।

मनुष्यको प्रभुके बिना चैन आता है; क्योंकि वह भक्तिरसको समझा नहीं है ।

कुन्ती माँगती हैं कि बड़ी भारी विपत्तियाँ आती रहें, ऐसा वरदान दीजिये ।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'यह क्या माँगती हैं आप ! आपकी बुद्धि चकरा तो नहीं गयी है ? आजतक दुःखके कई प्रसङ्ग आये हैं । अब सुखकी बारी आयी है । क्या अब दुःखी होनेकी इच्छा है ?'

हर प्रकारका अभिमान छोड़कर जो दीन बनता है, वह भगवान्‌को प्यारा लगता है । कुन्ती दीन बनी है । नाथ ! मैं जो माँग रही हूँ, वही ठीक है । दुःख ही मेरा गुरु है । दुःखमें मनुष्य सयाना बनता है । दुःखसे जीवको परमात्माके चरणोंमें जानेकी इच्छा होती है । जिस दुःखमें नारायणका स्मरण हो वह तो सुख है, उसे दुःख कैसे कहें ! विपत्तिमें आपका स्मरण होता है, इसलिये मैं उसे सम्पत्ति मानती हूँ ।

सुखके माथे शिल पड़ो, जो नाम हृदयसे जाय ।
बलिहारी वा दुःखकी, जो पल पल नाम जपाय ॥

हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रसे कहा था कि आपके ध्यानमें सीताजी तन्मय हैं, इसीसे कहता हूँ कि सीताजी आनन्दमें हैं—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई । जब तव सुमिरन भजन न होई ॥

नाथ ! जब आपका स्मरण, भजन न हो सके वही सच्ची विपत्ति है, ऐसा समझो ।

मेरे सिरपर विपत्तियाँ आयें कि जिससे आपके चरणोंका आश्रय लेनेकी भावना जागे । दुनियाके महापुरुषोंके जीवनमें दुःखके प्रसङ्ग ही पहले आते हैं ।

भगवान् रामकी दयालुता

मंजुल मूरति मंगलमई ।
भयो बिसोक बिलोकि बिभीषन, नेह देह-सुधि-सींव गई ॥
उठि दाहिनी ओर तें सनमुख सुखद माँगि बैठक लई ।
नख-सिख निरखि-निरखि सुख पावत, भावत कछु,-कछु और भई ॥
बार कोटि सिर काटि, साटि लटि रावन संकर पै लई ।
सोइ लंका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासन-ज्यों दई ॥
प्रीति-प्रतीति-रीति-सोभा-सरि, थाहत जहँ-जहँ तहँ घई ।
बाहु-बली, बानैत बोल को, बीर बिस्वबिजई-जई ॥
को दयालु दूसरो दुनी, जेहि जरनि दीन हिय की हई ?
तुलसी काको नाम जपत जग जगती जामति बिनु बई ॥

उद्धव-संदेश--१४

(लेखक—डॉ० श्रीमहानामव्रतजी ब्रह्मचारी एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

क्षणभर शान्त रहकर श्रीमती राधा पुनः प्रलाप करने लगीं—'नहीं, नहीं, मेरा मरण कैसे हो सकता है ! मरणमें सबसे बड़ी बाधा तो है उनके श्रीमुखकी पुनः आगमन-विषयक उक्ति।' हठात् श्रीराधाने आकाशकी ओर मुँह फेरते ही देखा कि एक कौआ मथुराकी दिशामें उड़ा चला जा रहा है। तब वे उसे लक्ष्य करके कहने लगीं—'हे वायसराज ! सुनो, मथुरा जा रहे हो न ! तो एक मेरी बात भी सुनते जाओ—वृन्दावनसे बाहर निकलते ही फिर किसी भी अन्य दिशामें देखे बिना सीधे मधुपुरी चले जाओ। वहाँके राजाको प्रणाम करके मेरा यह संदेश कहना **'वन्दनोत्तरं संदेशं वद'**—किसी गृहमें आग लग जाय तो पहला कर्तव्य होता है कि कोई गृहपालित पशु भीतर हो तो द्वार खोलकर उसे मुक्त कर देना। मेरे इस देह-गृहमें प्रबल अग्नि प्रज्वलित हो रही है। उन्हींने तो यह आग लगायी है। उनसे कहना कि मेरा प्राण-पशु बाहर नहीं जा पा रहा है—**'दग्धुं प्राणपशुं शिखी विरहभूरिन्धे मदङ्गालये'**। इसका कारण यह है कि द्वारमें अर्गला लगी हुई है। उन्हें कहना कि जरा अर्गला तो हटा दें। यदि पूछें कि कौन-सी अर्गला, तो कह देना कि 'मैं फिर आऊँगा'—यह आशावाणी ही वह अर्गला है **'आशार्गलाबन्धनम्'**। थोड़ी देर रुककर वे फिर सब सखियोंको उद्देश्य करके बोलने लगीं—

'सखि ! यमुना नदीके किनारे लीलाकदम्बके नीचे मुझे अति शीघ्र ले चलो। तुम्हीं मेरी अन्तसमयकी बन्धु हो, इसलिये यमुना-रज लेकर मेरी सारी देहपर 'श्याम' नाम लिख देना। उसे फिर तुलसी-मंजरीसे सजा देना। जब मेरे प्राण बहिर्गत होने लगें, तब सब सखियाँ मुझे घेरकर 'हरि-हरि' कीर्तन करते रहना।'

श्रीमान् उद्धव विस्फारित नेत्रोंसे विरहकातरताकी इस दारुण मूर्तिको देखने लगे और उत्कर्ण होकर दिव्य उन्मादिनीकी प्रलाप-उक्ति सुनने लगे। देखते-देखते और सुनते-सुनते मानो उनके देह-प्राण, मन-बुद्धि, चैतन्य सब मिलकर एक विपुल वेदनानुभूतिमें एकाकार होने लगे। उद्धव पहचान गये—जिनके विषयमें बहुत सुन चुका हूँ, घोर निद्रामें भी जिनका नाम लेकर मेरे प्रभु चमक उठते हैं और दीर्घ निःश्वास त्याग करने लगते हैं—ये वे ही श्रीराधा हैं।

श्रीशुकदेवजीने श्रीराधाका कहीं स्पष्ट नाम नहीं लिया है, कहा है—**'काचित्'**। **'क=प्रेमसुख, आ=समन्तात्, चित्=ज्ञानं यस्याः'** अर्थात् श्रीकृष्णको प्रेम करके जिस अखण्ड अनन्त सुखकी अनुभूति होती है, उस सुखको जिन्होंने परिपूर्ण रूपसे अनुभव कर लिया है, वे ही यहाँ **'काचित्'** हैं। इस प्रेमसुखका अनुभव तो अनेक लोग कर सकते हैं, किंतु प्रेमकी परिपूर्णता होनेके कारण, अनुभवकी भी पूर्णता प्राप्त नहीं होती। परिपूर्ण प्रेम-सुखका अनुभव एकमात्र श्रीराधाको ही होता है, कारण, वे मादनाख्यभावमयी हैं। अतएव इस जगत्में एकमात्र श्रीराधाको ही **'काचित्'** नामसे आख्यात किया जा सकता है। श्रीशुकमुनिने अत्यन्त कुशलतापूर्वक श्रीराधाका नाम गुप्त ही रखा है—

यमुना-तटिनी-कूले केलि-कदम्बेर मूले, मोरे लये चललो त्वराय।
अन्तिमेर बन्धु हये, यमुना-मृत्तिका लये, सखी मोर लियो सर्वगाय
श्यामनाम तदुपरि, लिखो सब सहचरी, तुलसी मंजरी दियो ताय।
आमारे वेष्टन करि, बोलो सबे हरि हरि, जखन पराण बहिराय॥
(हरिकथा)

*

'बुझिबे रसिकजन ना बुझिबे मूढ़।'

'इस रहस्यको केवल रसिक भक्त ही समझ सकेंगे, मूढ़ प्राणी नहीं समझेंगे।'

(३)

कृष्ण-विरह-व्याकुल श्रीराधा उद्धवके प्रति दस श्लोक बोली हैं। 'बोली हैं' न कहकर 'प्रलाप बका है' कहना ही उचित होगा। गौड़ीय वैष्णव-आचार्योंने कहा है—उद्धवके सम्मुख विचित्रतामय 'जल्प' किया है। इन दस श्लोकोंको उन्होंने 'चित्रजल्प' नाम दिया है।

'चित्रजल्प' शब्द आचार्यपादोंका एक परिभाषा-मूलक शब्द है। परिभाषाका तात्पर्य अनुभव करना हो तो आचार्यपादोंद्वारा आस्वादित रसतत्त्वके सम्बन्धमें किंचित् आलोचना कर लेना आवश्यक है।

गौड़ीय वैष्णवाचार्योंके अनुभवके अनुसार प्रेम ही जगत्का परतत्त्व है। प्रेमसे ही जगत्की उत्पत्ति, प्रेममें ही जगत्की स्थिति और प्रेममें ही जगत्की परिणति है। श्रुतिमन्त्रमें कहा है—जगत् आनन्दसे ही उद्भूत हुआ है और आनन्दके अभिमुख ही बढ़ा जा रहा है। इसीलिये वेदमें आनन्दको ही ब्रह्म कहा है—**'आनंद ब्रह्म'**। गौड़ीय आचार्योंके मतसे आनन्दकी पराकाष्ठा ही 'प्रेमपदवाच्य' है—**'आनन्द-चिन्मय रस प्रेमेर आख्यान।'** प्रेमकी अभिव्यक्ति प्रेमिक-प्रेमिकाके भाव-बन्धनमें व्यक्त होती है।

सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे।
यद्भावबन्धनं यूनोः बुधैः प्रेमा निगद्यते॥
(उज्ज्वल नीलमणि)

जो भाव-बन्धन अनित्य है, वह प्रेम नहीं है। जो भाव-बन्धन अजर, अमर, अविनाशी है, वही प्रेम है। ध्वंस होनेके सर्वविध कारणोंके विद्यमान रहते हुए भी जो भाव-बन्धन ध्वंस नहीं होता, वही प्रेम है। अतः भक्त और भगवान्का भाव-बन्धन ही प्रेमपदवाच्य हो सकता है, लौकिक कोई सम्बन्ध इस पदका वाच्य नहीं हो सकता।

इक्षुरस गाढ होनेपर गुड़ बनता है। गुड़ गाढ होनेपर चीनी बनती है। चीनी गाढ होकर मिश्री बनती है। मिश्री और गाढ होकर सिता-मिश्री (सिहेदार-मिश्री) बनती है। उसी प्रकार प्रेमवस्तु क्रमशः गाढ़ता प्राप्त होते-होते—स्नेह-मान-प्रणय, राग-अनुराग, भाव-महाभाव, रूढ-महाभाव, आरूढ-महाभाव और मादनाख्य-महाभावमें परिणत होती है। इन स्तरोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

प्रेम जब गाढतर होता है, तब चित्त-रूपी दीपकको उद्दीप्त करता है **'चिद्दीपदीपनम्'** एवं हृदयको द्रवीभूत करता है **'हृदयं द्रावयन्'**, तब उसका नाम होता है 'स्नेह'। अन्तरमें स्नेहका जन्म हो जानेपर श्रीकृष्णके रूप-दर्शनसे कभी नयन तृप्त नहीं होते।

'कोटि आँखि नाहि दिलो, दिलो सबे दुई।
ताहाते निमेष दिलो कि देखिव मुई॥'

'विधाताने करोड़ों आँखें नहीं दीं, केवल दो ही दी हैं। इनमें भी फिर निमेष (आँखकी पलक) दे दी तो मैं बेचारा क्या देखूँगा!'

स्नेहका उदय होनेपर कर्ण श्रीकृष्ण-कथा-श्रवणसे कभी अघाते नहीं। और अधिक सुननेकी इच्छा बनी रहती है। कृष्णनामका जप करते-करते भी रसना पूर्णतया तृप्त नहीं होती, पुनः-पुनः उच्चारण करनेकी लालसा बनी रहती है।

'ना जानि कतेक मधु, श्याम नामे आछे गो,
बदन छाड़िते नाहि पारे।'

'श्याम-नाममें न जाने कितना मधु भरा पड़ा है कि जीभ उसका क्षणभर भी त्याग नहीं कर पाती।'

यहाँ प्रेम स्नेहमें परिणत हो गया है। हमारी दृष्टिसे स्नेह दो प्रकारका है—घृतस्नेह और मधुस्नेह। घृतस्नेह श्रीकृष्णके आदरसे कृतार्थ होकर मानो विगलित हो जाता है। मधुस्नेह श्रीकृष्णद्वारा आदर-प्राप्तिसे गाढ़ताको प्राप्त होकर दृढ़तर हो जाता है। उससे श्रीकृष्णके सुखका आधिक्य अनुभूत होता है। घृतस्नेह भावान्तरके साथ मिश्रित होनेपर सुस्वादु होता है, मधुस्नेह स्वयं ही माधुर्यसे भरपूर है। 'मैं उनका हूँ', ऐसी भावनासे उत्पन्न स्नेहको घृतस्नेह कहते हैं। 'वे मेरे हैं,' इस भावनासहित जो स्नेह है वही मधुस्नेह है। (क्रमशः)

अनुवादक—श्रीचतुर्भुजजी तोषणीवाल

सुरुचि और सुनीति

(लेखक—डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें भक्त बालक ध्रुवका प्रसिद्ध आख्यान चार अध्यायोंमें विस्तारसे वर्णित है। भागवतकी प्रत्येक कथा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकारके अर्थोंसे संवलित है। ध्रुवकी कथामें भी स्पष्टतया ये तीनों अर्थ मिले देखे जा सकते हैं। आधिभौतिक दृष्टिसे यह खगोल-विद्याके नक्षत्रमण्डलसे सम्बद्ध एक ऐसी आलंकारिक कहानी है, जिसमें ग्रहोंके परस्पर आकर्षण, विकर्षण और भ्रमण (भ्रमि) आदिके द्वारा कालके अल्प और बृहत् दो बिन्दुओं (क्रमशः कल्प और वत्सर) की उत्पत्ति तथा निखिल ब्रह्माण्डातीत सौर-विज्ञानके अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्योंका समाकलन हुआ है। आधिदैविक दृष्टिसे यह सृष्टिके आदि कृतयुगका सत्य इतिहास है, जिसमें ध्रुवकी लोकोत्तर भक्तिनिष्ठा तथा देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी भक्तवत्सलताका सुन्दर चित्रण है; किंतु इसका आध्यात्मिक अर्थ सर्वथा सूक्ष्म, सार्वकालिक तथा साधनाका एक मञ्जुल संकेत-सूत्र है, जिसका साधकोंके लिये विशेष महत्त्व है। यहाँ हम इसी दृष्टिकोणसे इसपर एक संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत कर साधन-मार्गमें इस अर्थकी अन्वितिको सिद्ध करनेका प्रयास करेंगे।

'उत्तानपाद'का शाब्दिक अर्थ है 'उलटे पैरोंवाला'। आत्माकी स्वाभाविक गति अर्थात् उसका चित्तत्त्व (जिसे प्रत्यभिज्ञा-दर्शनमें 'परामर्श' कहा जाता है) अन्तःपर्यवसायी है। जब यह अविद्यारूपिणी शतरूपाके पति स्वायंभुव मनु अर्थात् 'मन'का पुत्रत्व स्वीकार करता है, तब इसकी गति बहिर्मुखी हो जाती है। अतः आध्यात्मिक दृष्टिसे नित्य शुद्ध-बुद्ध-स्वतन्त्र आत्माकी ही संज्ञा (मनरूपी विक्रियामें स्वयंको प्रतिबिम्बित करके संसारासक्त होनेके कारण) 'उत्तानपाद' हो जाती है। उत्तानपादकी दो पत्नियाँ हैं, सुरुचि और सुनीति, जिनमें सुरुचि ही राजाकी प्रेयसी है। सुनीति पतिद्वारा उपेक्षिता पत्नी है। विक्रियामें प्रतिबिम्बित बहिर्मुख आत्मा प्रक्रियारूपिणी बुद्धिका परिणय करता है। यह एक ही बुद्धि अन्तर्बहिरनुव्यवसाय (चिन्तन)-भेदसे दो प्रकारकी होकर दो नाम धारण कर लेती है। इसीको 'शुद्धबुद्धि' और 'अशुद्ध-बुद्धि' भी कहा जाता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने इन्हीं दो भेदोंको सबके भीतर रहनेवाली सुमति और कुमति कहा है—

'सुमति कुमति सब के उर रहहीं ।' बहिर्मुखी बुद्धि सुरुचि है । 'रुचि'का अर्थ है, दीप्तिचाकचिक्य और इच्छा या स्पृहा । अशुद्ध-भोगासक्त बुद्धि बहिर्मुख आत्माको विषयोंके चाकचिक्य और अनेक आशा-निराशाओंमें उलझाये रखती है, फिर भी अविद्याग्रन्थिके कारण वह उसीको बहुमान देता है । इसके विपरीत सुनीति शुद्ध-बुद्धि है । नीति शब्द **'नि-प्रापणे'** धातुसे बनता है । नीतिका अर्थ है—वास्तविक लक्ष्यतक ले चलनेवाली, वापस पहुँचानेवाली । यह सुनीति है अर्थात् सरल-सुन्दर भक्तिमार्गद्वारा अपने पुत्र ध्रुव-संकल्पको भगवत्पदतक पहुँचा देती है । किंतु विडम्बना यही है कि राजा उत्तानपाद न तो इसे चाहता और न इसके पुत्र ध्रुवको ही वह पुत्रका स्नेह दे पाता है । सुरुचि और उसका पुत्र उत्तम (अर्थात् समृद्धिपूर्ण जीवन-स्तर) ही उसे प्रिय हैं ।

साधकके भीतर भगवत्प्राप्तिकी लालसा और उस ओर ले जानेवाली प्रज्ञा तो विद्यमान है, उसमें भगवत्प्राप्तिरूपी संकल्पका ध्रुव भी उत्पन्न होता है, किंतु इस संकल्पमें तीव्रता या लक्ष्यकी एकनिष्ठता शीघ्र नहीं हो पाती । यह तब होती है जब सुरुचि अपने पुत्र उत्तमकी तुलना करके पिताकी गोदमें चढ़नेको उत्सुक ध्रुव और उसकी माताको तिरस्कृत करती है । आजकी भाषामें सुरुचिको 'सभ्यता' और सुनीतिको 'संस्कृति' भी कहा जा सकता है । कोरी सभ्यता संस्कारहीन होती है, सभ्यताका पुत्र समृद्ध-जीवनस्तर सर्वदा टिक नहीं पाता । यह जीवनस्तर जिस भौतिक द्रव्य या धनसे समृद्ध होता है, उसकी स्वामिनी कुछ आधिदैविक शक्तियाँ हैं, जिन्हें 'यक्ष' कहा गया है । इसीलिये कालान्तरमें मृगया करने गये हुए उत्तमका यक्ष लोग वध कर देते हैं, किंतु ध्रुव अपनी साधनासे अमर भगवत्पदका न केवल अधिकारी बनता है, अपितु वह अपनी जननी सुनीतिको भी उस दिव्य भगवद्धाममें पहुँचा देता है ।

यह सुनीति ही अपने पुत्र सत्संकल्पको ध्रुव बनाती है । **'नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद् दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन ।'** (श्रीमद्भा० ४ । ८ । २३)-का पारमार्थिक उपदेश देकर यह उसे तपश्चर्या-हेतु प्रेरित करती है, जब कि सुरुचि अपने पुत्र उत्तमको अत्यन्त विलासमय तथा प्राणिहिंसामय बनानेका कार्य करके उसके विनाशमें हेतु बनती है ।

महाराज उत्तानपाद अन्तमें अपने राज्यका अधिकारी भगवत्कृपाप्राप्त ध्रुवको ही बनाते हैं और तभी उनमें सांसारिक विरक्ति उत्पन्न होती है । सद्-बुद्धिके सत्संकल्पसे भगवत्प्रेम प्राप्त करनेवाले भावराज्यका अभिषेक पूरा हो जानेपर यह उलटे पैरोंवाला आत्मा पुनः अपनी वास्तविक गति-स्मृतिको प्राप्त हो जाता है—

उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तम् ।
श्रुत्वा दृष्ट्वाद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥
वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनां च सम्मतम् ।
अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥
आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशाम्पतिः ।
वनं विरक्तः प्राविशद् विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥
(श्रीमद्भा० ४ । ९ । ६५—६७)

इस प्रकार श्रीमद्भागवतकी ध्रुव-कथामें सुनीति और सुरुचिके रूपमें शुद्धाशुद्ध बुद्धि-वृत्तियों अथवा सुमति-कुमतिका यह निरूपण आत्मसाधनाके साधकोंके लिये अत्यन्त महत्त्वका विषय सिद्ध होता है ।

गीता-तत्त्व-चिन्तन*

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[श्रीमद्भगवद्गीताके भावोंको भली-भाँति समझनेकी जिज्ञासा रखनेवाले साधकोंके लिये परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजने गीताके तत्त्वोंका गूढ़ विवेचन अत्यन्त सरल भाषामें प्रस्तुत किया है, जिसे यहाँ पाठकोंके लाभार्थ क्रमशः दिया जा रहा है । आशा है, जिज्ञासु पाठक इनका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन-मननकर अवश्य लाभान्वित होंगे ।--सम्पादक]

गीतामें संवाद

गीतायामस्ति संवादः संजयधृतराष्ट्रयोः ।
श्रीकृष्णार्जुनयोश्चैव द्विविधस्तत्तुमुत्तमः ॥

गीतामें दो संवाद हैं—धृतराष्ट्र और संजयका संवाद तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवाद ।

गीताके पहले अध्यायके पहले श्लोकमें ही धृतराष्ट्र बोले हैं, उसके बाद अठारह अध्यायतक धृतराष्ट्र बोले ही नहीं । संजय बीच-बीचमें कई बार बोले हैं ।

पहले अध्यायमें **'हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह'** (१ । २१), **'उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति'** (१ । २५) आदि वचनोंके रूपमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवाद तो आया है, पर यह आया है संजयके वचनोंके अन्तर्गत ही । श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवाद दूसरे अध्यायके दूसरे श्लोकसे आरम्भ होता है ।

उपर्युक्त दोनों संवादोंके अतिरिक्त दुर्योधन और प्रजापति ब्रह्माजीके वचन भी गीतामें आते हैं, जैसे—पहले अध्यायके तीसरे श्लोकसे ग्यारहवें श्लोकतक (कुल नौ श्लोकोंमें) दुर्योधनके वचन हैं; और तीसरे अध्यायके दसवें श्लोकके उत्तरार्धसे बारहवें श्लोकके पूर्वार्धतक ब्रह्माजीके वचन हैं । इनमेंसे दुर्योधनके वचन तो संजयके वचनोंके अन्तर्गत हैं और ब्रह्माजीके वचन भगवान्‌के वचनोंके अन्तर्गत हैं । इसीलिये वहाँ **'दुर्योधन उवाच'** और **'प्रजापतिरुवाच'** नहीं दिया गया ।

दूसरी बात, सम्पूर्ण महाभारत वैशम्पायन और जनमेजयका संवाद है । उसमेंसे गीतामें धृतराष्ट्र और संजयका संवाद है†, जिसमें संजय श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवाद सुना रहे हैं, न कि दुर्योधन आदिका । प्रत्येक अध्यायके अन्तमें जो पुष्पिका दी गयी है, उसमें भी **'श्रीकृष्णार्जुनसंवादे'** पद दिया गया है । अतः गीतामें दो ही संवाद हैं ।

---

* पिछले कुछ समयसे 'कल्याण'में "गीता-माधुर्य" का प्रकाशन चल रहा था, परंतु अब वह गीताप्रेससे पुस्तकरूपमें प्रकाशित हो जानेके कारण सर्वत्र उपलब्ध है । अतः अब उसके स्थानपर गीताके नये तात्त्विक लेख यहाँ दिये जा रहे हैं।

† महाभारतके वक्ता वैशम्पायन ऋषि हैं और श्रोता राजा जनमेजय हैं । महाभारतमें कुल अठारह पर्व हैं । उनमेंसे भीष्मपर्वके आरम्भमें राजा जनमेजय वैशम्पायनजीसे प्रश्न करते हैं कि कौरवों और पाण्डवोंने कैसे युद्ध किया ? इसके उत्तरमें वैशम्पायनजीने दोनों सेनाओंके हर्षोल्लास आदिकी बातें बतायीं । फिर वेदव्यासजी धृतराष्ट्रके पास आये और उन्होंने धृतराष्ट्रको अवश्यम्भावी युद्धके विषयमें बहुत-सी बातें कहीं तथा संजयको दिव्यदृष्टि दी; जिससे वे धृतराष्ट्रको युद्ध आदिकी सभी बातें सुनाते रहें । वेदव्यासजीके चले जानेपर धृतराष्ट्रने संजयसे कहा कि जिस भूमिके लिये मेरे और पाण्डुके पुत्र लड़नेके लिये तैयार हो रहे हैं, उसका मुझे विस्तारसे वर्णन सुनाइये । इसपर संजयने भारतवर्षकी भूमिका; द्वीपों, नदियों, पहाड़ों आदिका वर्णन किया । फिर श्रीमद्भगवद्गीतापर्वके आरम्भमें (जो कि भीष्मपर्वका तेरहवाँ अध्याय है) वैशम्पायनजीने राजा जनमेजयसे कहा कि एक दिनकी बात है, संजयने युद्धभूमिसे लौटकर धृतराष्ट्रको भीष्मपितामहको शरशय्यापर गिरा दिये जानेका समाचार दिया । इसे लेकर धृतराष्ट्र और संजयके बीचमें दोनों सेनाओंकी बहुत-सी बातें होती रहीं । अन्तमें भीष्मपर्वके पचीसवें अध्यायके आरम्भमें (जो कि गीताका पहला अध्याय है) धृतराष्ट्रने युद्धका क्रमशः और विस्तारपूर्वक वर्णन सुननेके लिये संजयसे प्रश्न किया ।

गीतामें अर्जुनद्वारा स्तुति, प्रार्थना और प्रश्न

यत्र यत्र च गीतायां प्रोक्तं कृष्णसखेन वै।
प्रार्थना कुत्रचित्तत्र क्वचित्प्रश्नः क्वचित्स्तुतिः॥

स्तुतिमें भगवान्‌की महिमा, गुण, प्रभाव आदिका कथन (गान) होता है। प्रार्थनामें भगवान्‌के गुणों आदिको तत्त्वसे जाननेकी अथवा भगवान्‌से कुछ पानेकी इच्छा होती है। अपने हृदयमें कोई हलचल, संदेह, जिज्ञासा होती है, उसे दूर करनेके लिये प्रश्न होता है।

स्तुतिमें भगवान्‌के प्रति आस्तिकभाव अधिक होता है। प्रार्थनामें आस्तिकभावके साथ-साथ अपनी इच्छा भी रहती है। प्रश्नमें केवल अपनी जिज्ञासाकी पूर्ति करना होता है।

स्तुतिमें पूज्यभाव अधिक होता है। प्रार्थनामें पूज्य-भावके साथ-साथ विश्वास और अपनी इच्छा भी होती है। प्रश्नमें केवल विषयका समाधान करनेकी इच्छा रहती है।

स्तुतिमें भगवान्‌के गुणगानकी मुख्यता रहती है। प्रार्थनामें गुणगानकी मुख्यता होते हुए भी साथमें अपनी माँग रहती है। प्रश्नमें भी गुणगान होता है, पर उसमें जिज्ञासाकी पूर्ति करना, संदेह दूर करना मुख्य रहता है। इस दृष्टिसे प्रश्नमें जितने अंशमें भगवान्‌की विशेषता दीखती है, उतना अंश स्तुति है और जितने अंशमें समाधानकी इच्छा है, उतना अंश प्रार्थना है।

जहाँ भक्तका भगवान्‌के साथ घनिष्ठ अपनापन (सख्यभाव) होता है, वहाँ भगवान्‌के गुण दीखते हुए भी स्तुति, प्रार्थना और प्रश्न नहीं होते। कारण कि जब 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं', तब भगवान्‌में क्या विशेषता है और मुझमें क्या कमी है। भक्तका भगवान्‌के साथ जो घनिष्ठ अपनापन, आत्मीयता, एकता, प्रेम है, उससे भगवान्‌को विशेष आनन्द मिलता है। (भगवान्‌का यह विशेष आनन्द ही भक्तका आनन्द होता है; भक्तका अपना कोई विशेष आनन्द नहीं होता।) इस प्रेमका नाम ही माधुर्य है। इसमें स्तुति, प्रार्थना और प्रश्न——ये तीनों ही नहीं होते।

गीतामें अर्जुन जहाँ-जहाँ बोले हैं, वहाँ किसमें स्तुति है, किसमें प्रार्थना है और किसमें प्रश्न है—इसे संक्षेपसे नीचे दिया जाता है——

दूसरे अध्यायके सातवें श्लोकके पूर्वार्धमें अपनी कमजोरीके कारण 'मुझे क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये'——इस विषयमें अर्जुनका प्रश्न है, और उत्तरार्धमें 'मेरा निश्चित कल्याण हो जाय'——इसके लिये अर्जुनकी भगवान्‌से शरणागतिपूर्वक प्रार्थना है। फिर चौवनवें श्लोकमें 'स्थितप्रज्ञके क्या लक्षण हैं? वह कैसे बोलता है? कैसे बैठता है और कैसे चलता है?' इस तरह जिज्ञासापूर्वक चार प्रश्न हैं।

तीसरे अध्यायके पहले और दूसरे श्लोकोंमें 'जब कर्मसे बुद्धि ही श्रेष्ठ है, तब फिर मुझे घोर कर्ममें क्यों लगाते हैं? जिससे मैं कल्याणको प्राप्त हो जाऊँ, वह एक बात कहिये'——इस तरह प्रार्थनापूर्वक प्रश्न है। छत्तीसवें श्लोकमें 'पाप करना न चाहते हुए भी मनुष्यके द्वारा पाप करानेवाला कौन है?'——इस तरह जिज्ञासापूर्वक प्रश्न है।

चौथे अध्यायके चौथे श्लोकमें 'आपने सूर्यको उपदेश कैसे दिया?'——इस तरह भगवान्‌के अवतारके विषयमें अर्जुनका जिज्ञासापूर्वक प्रश्न है।

पाँचवें अध्यायके पहले श्लोकमें संन्यास और योगके विषयमें अर्जुनका प्रार्थनापूर्वक प्रश्न है।

छठे अध्यायके सैंतीसवें-अड़तीसवें श्लोकोंमें योगभ्रष्टकी गतिके विषयमें अर्जुनका संदेहपूर्वक प्रश्न है। उन्तालीसवें

श्लोकमें संदेहको दूर करनेके लिये अर्जुनने (भगवान्‌की महत्ताको समझाते हुए) भगवान्‌से प्रार्थना की है ।

आठवें अध्यायके पहले-दूसरे श्लोकोंमें ब्रह्म, अध्यात्म आदिके विषयमें अर्जुनका जिज्ञासापूर्वक प्रश्न है ।

दसवें अध्यायके बारहवेंसे पंद्रहवें श्लोकतक अर्जुनने भगवान्‌के प्रभावको लेकर उनकी स्तुति की है । फिर सोलहवेंसे अठारहवें श्लोकतक अर्जुनका प्रार्थनापूर्वक प्रश्न है (सोलहवें और अठारहवें श्लोकोंमें प्रार्थना है तथा सत्रहवें श्लोकमें प्रश्न है) ।

ग्यारहवें अध्यायके पहलेसे चौथे श्लोकतक विश्वरूप दिखानेके लिये अर्जुनकी भगवान्‌से नम्रतापूर्वक प्रार्थना है । पंद्रहवेंसे तीसवें श्लोकतक भगवान्‌के अलौकिक प्रभावको लेकर स्तुति है और इकतीसवें श्लोकमें प्रार्थनापूर्वक प्रश्न है । छत्तीसवेंसे चालीसवें श्लोकतक नमस्कारपूर्वक स्तुति है और इकतालीसवेंसे चौवालीसवें श्लोकतक पूर्वकृत तिरस्कारको क्षमा करनेके लिये प्रार्थना है । पैंतालीसवें-छियालीसवें श्लोकोंमें भगवान्‌से चतुर्भुज-रूप दिखानेके लिये प्रार्थना है ।

बारहवें अध्यायके पहले श्लोकमें 'सगुण और निर्गुण उपासकोंमें कौन श्रेष्ठ है ?'—इस विषयमें अर्जुनका प्रश्न है ।

चौदहवें अध्यायके इक्कीसवें श्लोकमें गुणातीतके विषयमें अर्जुनका प्रश्न है ।

सत्रहवें अध्यायके पहले श्लोकमें निष्ठाको लेकर अर्जुनका प्रश्न है ।

अठारहवें अध्यायके पहले श्लोकमें संन्यास और योगके विषयमें अर्जुनका प्रश्न है* ।

गीतामें अर्जुनकी युक्तियाँ और उनका समाधान

यावत्यो युक्तयः सन्ति शोकमग्नार्जुनस्य च ।
तासां प्रत्युत्तरं दत्तं भक्तानां वै हिताय च ॥

पहले और दूसरे अध्यायोंमें अर्जुनने युद्ध न करनेके विषयमें जितनी भी युक्तियाँ दी हैं, वे सभी शोक और मोहसे आविष्ट होनेके कारण अविवेकपूर्ण हैं । गीतामें भगवान्‌ने ऐसा विवेचन किया है, जिससे अर्जुनकी युक्तियोंका स्वाभाविक ही समाधान हो जाता है । भगवान्‌के विवेकपूर्ण विवेचनके सामने केवल अर्जुनकी ही नहीं, किसीकी भी अविवेकपूर्ण युक्तियाँ टिक नहीं सकतीं ।

अर्जुन कहते हैं—मैं शकुनोंको, लक्षणोंको विपरीत देखता हूँ (१ । ३१), तो भगवान् कहते हैं—कर्मयोगी शकुनोंकी परवाह नहीं करता, प्रत्युत वह तो शुभ-अशुभ परिस्थितियोंसे भी राग-द्वेष नहीं करता (२ । ५७); मेरा भक्त शुभ-अशुभ शकुनोंका, परिस्थितियोंका त्यागी होता है (१२ । १७); तुम मुझमें चित्तवाला होकर मेरी कृपासे सम्पूर्ण विघ्नोंको तर जाओगे (१८ । ५८) ।

अर्जुन कहते हैं—मैं युद्धमें स्वजनोंको मारकर परिणाममें अपना कल्याण नहीं देखता (१ । ३१), तो भगवान् कहते हैं—क्षत्रियके लिये धर्ममय युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणका साधन नहीं है (२ । ३१); क्योंकि अपने धर्मका पालन करते हुए

* अर्जुनके प्रश्नके सिवा गीतामें धृतराष्ट्र और भगवान्‌के भी प्रश्न हैं । पहले अध्यायके पहले श्लोकमें धृतराष्ट्रने संजयसे प्रश्न किया कि 'हे संजय ! धर्मभूमि कुरुक्षेत्रमें युद्धकी इच्छासे इकट्ठे हुए मेरे और पाण्डुके पुत्रोंने क्या किया ?' और अठारहवें अध्यायके बहत्तरवें श्लोकमें भगवान्‌ने (पूरी गीता सुनानेके बाद) अर्जुनसे प्रश्न किया कि 'हे धनंजय ! क्या तुमने एकाग्रचित्तसे गीता सुनी ? और क्या तुम्हारा अज्ञानसे उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हुआ ?'

यदि मृत्यु भी हो जाय, तो भी कल्याण हो जाता है (३ । ३५)।

अर्जुन कहते हैं—मैं न तो विजय चाहता हूँ, न राज्य चाहता हूँ और न सुख ही चाहता हूँ (१ । ३२), तो भगवान् कहते हैं—तुम्हें किसी प्रकारकी कामना न रखकर जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान करके युद्ध करना चाहिये (२ । ३८)।

अर्जुन कहते हैं—मैं जिनके लिये राज्य, भोग आदि चाहता हूँ, वे ही मरनेके लिये सामने खड़े हैं (१।३३), तो भगवान् कहते हैं—तुम सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके संताप (शोक) और ममतासे रहित होकर युद्ध करो (३ । ३०)। जो सम्पूर्ण कामनाओंको और स्पृहाको छोड़ देता है तथा अहंता-ममतारहित हो जाता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है (२ । ७१)।

अर्जुन कहते हैं—युद्धमें इन धृतराष्ट्रके सम्बन्धियोंको मारकर हमें क्या प्रसन्नता होगी ? (१ । ३६), तो भगवान् कहते हैं—प्रसन्नता युद्ध करने अथवा न करनेसे नहीं होती, प्रत्युत राग-द्वेषसे रहित अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा व्यवहार करनेसे प्रसन्नता होती है (२ । ६४)।

अर्जुन कहते हैं—युद्धमें इन आततायियोंको मारनेसे हमें पाप लगेगा (१ । ३६), तो भगवान् कहते हैं—जब तुम इस धर्ममय युद्धको नहीं करोगे, तब तुम्हें पाप लगेगा (२ । ३३)।

अर्जुन कहते हैं—युद्धमें स्वजनोंको मारकर हम सुखी कैसे होंगे ? (१ । ३७), तो भगवान् कहते हैं—जिन क्षत्रियोंको अनायास ही ऐसा धर्ममय युद्ध प्राप्त हो जाता है, वे ही सुखी होते हैं (२ । ३२)।

अर्जुन कहते हैं—हम कुलके नाशसे होनेवाले दोषोंको जानते हैं, इसलिये हमें तो युद्धसे निवृत्त हो जाना चाहिये (१ । ३९), तो भगवान् कहते हैं—यह तुम्हारी नपुंसकता है, कायरता है, हृदयकी तुच्छ दुर्बलता है, इसे तुम स्वीकार मत करो और अपने कर्तव्यका पालन करनेके लिये खड़ा हो जाओ (२ । ३)।

अर्जुन कहते हैं—युद्ध करनेसे परिणाममें धर्मका नाश हो जायगा (१ । ४०), तो भगवान् कहते हैं—युद्ध न करनेसे धर्मका नाश होगा (२ । ३३)।

अर्जुन कहते हैं—युद्ध करनेसे परिणाममें वर्णसंकरता पैदा हो जायगी, जिससे पितरोंका पतन हो जायगा और कुलधर्म तथा जातिधर्म नष्ट हो जायँगे (१ । ४१–४३), तो भगवान् कहते हैं—यदि मैं सावधान होकर अपने कर्तव्य-कर्मका पालन न करूँ तो संकरताको पैदा करनेवाला बनूँ अर्थात् युद्धरूप कर्तव्य-कर्म न करनेसे ही वर्णसंकरता पैदा होगी (३ । २४)।*

अर्जुन कहते हैं—युद्धके परिणाममें नरककी प्राप्ति होगी (१ । ४४), तो भगवान् कहते हैं—युद्ध करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होगी (२ । ३२, ३७)।

अर्जुन कहते हैं—हमलोग लोभके कारण पाप करनेमें प्रवृत्त हो गये हैं (१ । ४५), तो भगवान् कहते हैं—इस कामरूप लोभका त्याग करना चाहिये; क्योंकि यह मनुष्यका शत्रु है, पाप करानेमें हेतु है (३ । ३७)।

* अर्जुनकी युक्तिके अनुसार भी यदि विचार किया जाय तो वास्तवमें कर्तव्यका पालन न करना ही वर्णसंकरताका कारण है। युद्धमें कुलका नाश होनेपर स्त्रियोंका दूषित होना उनका कर्तव्यच्युत होना ही है और कर्तव्यच्युत होनेसे ही वर्णसंकरता आती है। यदि स्त्रियोंमें यह भाव रहे कि हमारे पतियोंने युद्धरूप कर्तव्यका पालन करते हुए अपने प्राणोंका त्याग कर दिया, पर अपने कर्तव्यका त्याग नहीं किया, फिर हम अपने कर्तव्यका त्याग क्यों करें ? तो वे कर्तव्यच्युत नहीं होंगी। कर्तव्यच्युत न होनेसे उनका सतीत्व सुरक्षित रहेगा, जिससे वर्णसंकरता आयेगी ही नहीं।

अर्जुन कहते हैं—मैं भीष्म और द्रोणको बाणोंसे कैसे मारूँ ? (२ । ४), तो भगवान् कहते हैं—ये सभी कालरूपसे मेरे द्वारा मारे हुए हैं, तुम केवल अपना कर्तव्य पालन करते हुए निमित्तमात्र बन जाओ (११ । ३३) ।

अर्जुन कहते हैं—मैं गुरुजनोंको न मारकर अर्थात् युद्ध न करके भिक्षाका अन्न खाना श्रेष्ठ मानता हूँ (२ । ५), तो भगवान् कहते हैं—दूसरेका धर्म भय देनेवाला है और अपने धर्मका पालन करते हुए यदि मृत्यु भी हो जाय, तो भी अपना धर्म कल्याण करनेवाला है (३ । ३५) ।

अर्जुन कहते हैं—हमलोग यह भी नहीं जानते कि युद्ध करना ठीक है या युद्ध न करना ठीक है (२ । ६), तो भगवान् कहते हैं—तुम नियत कर्म करो; क्योंकि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है (३ । ८); युद्धमें तुम वैरियोंको जीतोगे (११ । ३४) ।

सरलता और आनन्द

(लेखक—पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल एम्० ए०)

सरलता ही आनन्दका मूल स्रोत है । सरलता ही शक्तिका केन्द्र है । सरलता भगवान्‌को प्यारी है । जैसे-जैसे बालक चतुर होता जाता है, निजानन्दको खोता जाता है । आनन्दपूर्वक जीवित रहनेके लिये प्रत्येक व्यक्तिको बालभाव प्राप्त करना तथा बालकोंमें मिलना आवश्यक है । बच्चोंसे प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न रहता है । बड़े-बड़े सांसारिक जटिल कार्य करनेवाले लोग, जिनका उत्तर-दायित्व असीम रहता है, अपना थोड़ा-सा समय बच्चोंके साथ व्यतीत करनेमें अपना सौभाग्य समझते हैं । बच्चे उनमें नवजीवनका संचार कर देते हैं ।

इंगलैंडके राजा अलफ्रेडके बारेमें यह कथा प्रसिद्ध है कि वह किसी-किसी दिन गुप्तरूपसे अपना राज्यका कार्य छोड़कर एक गरीब बुढ़ियाके यहाँ चला जाता था । उसकी संरक्षकतामें दो शिशु रहते थे, राजा उन बालकोंके साथ खेलता था । उनके आनन्द-विनोदको बढ़ाता था । कभी-कभी अलफ्रेड स्वयं घोड़ा बनकर पैरों और हाथोंसे चलने लगता था और बच्चे उसके ऊपर सवार होते थे । इस प्रकार अलफ्रेड बच्चोंके साथ असीम आनन्दका उपभोग करता था । जो आनन्द राज्यका इतना बड़ा अधिकार प्राप्त करनेमें नहीं था, वही बच्चोंकी सङ्गतिमें उसको सुलभ हो गया ।

बच्चोंकी ओर हम आकर्षित क्यों होते हैं ? इसका कोई बौद्धिक उत्तर देना कठिन है । यह हमारे अव्यक्त मनकी प्रेरणा है । अज्ञातरूपसे वह हमें सरलता और स्फूर्तिकी ओर ले जाती है । बालकमें सरलता, स्फूर्ति और आनन्द भरपूर होता है । बस, ये ही वस्तुएँ हमें उसकी ओर खींच लेती हैं । हमारा सहज स्वरूप सरलता, स्फूर्ति और आनन्दमय है । बालक हमें अपने स्वरूपका स्मरण करा देते हैं । उसी असीम आनन्दकी ओर हमें ले जाते हैं ।

महात्मा ईसाने कहा है—'जबतक तुम बच्चे-जैसे नहीं बन जाओगे, तबतक परमात्माकी प्राप्ति कभी नहीं होगी ।' हमारा सांसारिक जीवन निरानन्दमय होता है । अतएव वह हमें आत्मस्थितिसे अथवा आत्मानन्दसे दूर ही ले जाता है ।

बालककी सङ्गति यदि बोधपूर्वक की जाय तो वह अवश्य परमानन्द और आत्मज्ञान प्राप्त करनेमें सहायक होगी । मनुष्य अपने साधारण व्यवहारमें कपट-छलसे प्रेरित रहता है । हमारी आत्मा इस प्रकारके अनुभवोंसे पीड़ित हो उठती है । हम सचाईको ढूँढना चाहते हैं । असद्-व्यवहार बालकके स्वभावके प्रतिकूल है । बालकका जीवन सद्भावनामय होता है, अतएव उसका दर्शनमात्र मनुष्यको पवित्र करता है ।

हम अपने मित्रों और संसारके व्यक्तियोंमें जो बहुत शिष्टाचार पाते हैं, वह प्रायः छलमय होता है । हम स्वयं इसी प्रकारका छलमय व्यवहार संसारमें करते हैं । इसी प्रकारके व्यवहारसे हमारा हृदय आक्रान्त हो उठता है । बालकके हृदयमें कपट-व्यवहारके लिये स्थान नहीं । अतएव वह सदा आनन्द-समुद्रमें निमग्न रहता है ।

मनुष्यकी सभ्यताका दूसरा नाम छल है । सभ्यता कपट-व्यवहारका विकसित रूप है । रूसो महाशयने अपने एक लेखमें यही दिखलाया है कि जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे मनुष्यके सदाचारका नाश होता है । जो मनुष्य जितना सभ्य और शिष्ट कहलाता है, वह प्रायः उतना ही असद्व्यवहार करने-वाला और धूर्त होता है ।

रूसोका दृष्टिकोण महात्माओं, कवियों और तत्त्व-ज्ञानियोंका दृष्टिकोण है । कवि सरल-हृदय होता है । कविता गङ्गाजीकी पवित्र धाराके समान कविके हृदय-रूपी स्वच्छ मानसरोवरसे निकलती है । कविता दल-दलकी उपज नहीं, संसारके आघात-प्रतिघातसे विकृत बुद्धि कविताका उद्गमस्थान नहीं बन सकती । सरलता, सहानुभूति और सद्व्यवहार—सबका स्रोत एक है । सरलता महात्माओंका गुण है, सहानुभूति कवियोंका और सद्व्यवहार तत्त्वज्ञानियोंका । वास्तवमें तीनों गुण एक ही तत्त्वके भिन्न-भिन्न नाम हैं ।

मनुष्य चतुर बनकर कुछ भी स्थायी लाभ प्राप्त नहीं कर पाता । चतुर मनुष्य सांसारिक व्यवहारमें कुशल होता है, किंतु वह आत्मज्ञानसे वञ्चित रहता है । इस प्रकारके मनुष्यसे उसके आस-पास रहनेवाले लोग भयातुर अवश्य रहते हैं, किंतु वह प्रेमका पात्र नहीं हो पाता । ऐसे मनुष्यके हृदयमें किंचिन्मात्र भी आनन्द नहीं रहता । वह जहाँ जाता है वहीं अपने आस-पासके व्यक्तियोंमें शङ्का, भय और चिन्ताका संसार निर्माण कर देता है । जिस तरह बालक अपनी सरलतासे आस-पासके लोगोंको संतुष्ट करता है, जिस प्रकार एक खिला हुआ फूल देखनेवालोंके मनको खिला देता है, उसी प्रकार सरल स्वभाववाला आदमी सदा अपने-आप प्रसन्न रहता है और उस प्रसन्नताका दान दूसरोंको भी दिया करता है । इसके विपरीत चतुर मनुष्य दूसरे लोगोंको चतुर बनाता है और इस तरह उनके हृदयको संकुचित और कपटसे कलुषित कर देता है । अंग्रेजीमें एक कहावत है—'स्वास्थ्य उतना ही संक्रामक है, जितनी कि बीमारी ।' बीमार आदमी सबमें बीमारी फैलाता है और स्वस्थ मनुष्य स्वास्थ्य । इसी तरह जिस मनुष्यका जीवन संसारमय है, वह अपने सम्पर्कसे दूसरोंको संसारी बनाता है और जिसका जीवन परमार्थमें लगा हुआ है, वह दूसरोंके मनमें भी परमार्थकी भावनाको दृढ़ करता है ।

कहानी

पागल बाबा

(लेखक—स्वामी श्रीरामराज्यम् सरस्वती)

लोग उन्हें 'पागल बाबा' कहने लगे, सो प्रभु-प्रेमकी खुमारीमें डूबे हुए वे कुछ नहीं बोले और न उन्होंने कोई प्रतिक्रिया ही व्यक्त की। हाँ, पहलेसे अधिक असावधानी और मस्ती आ गयी उनमें।

उस दिन पागल बाबा सड़कपर उछल-कूद मचाये हुए थे, नाच रहे थे, चिल्ला रहे थे। मुझे देखा तो वे दौड़कर मेरे पास आये, मेरा हाथ पकड़ा, और ले चले एक ओर गङ्गा-तटपर। वहाँ पहुँचकर वे चिल्लाने लगे—'निकल गया दीवाला, निकल गया दीवाला !'

'हरे, किसका दीवाला बाबा ?'—मैंने पूछा।

'किसका पूछते हो ?'—उन्होंने ध्यानसे मेरी ओर देखा, फिर धीरेसे कहा, 'प्राणशक्तिका, जीवन-शक्तिका।' फिर वे जोरसे हँसे और बोले—'वह देखो उधर।'

एक युवक पत्थरपर बैठा हुआ गङ्गाका प्रवाह देख रहा था। मानो पागल बाबा क्रोधमें उस युवकको खा जायँगे, ऐसे स्वरमें उन्होंने मुझसे कहा—'पूछो इससे, क्या कर रहा है वह ?' मैंने उस युवकसे पूछा तो वह बोला—'यों ही बैठा हूँ, मस्ती मार रहा हूँ, विश्राम कर रहा हूँ। कमरेमें बैठा-बैठा 'बोर' हो रहा था, इसलिये इधर चला आया।'

'क्या सोच रहे थे ?'—मैंने पूछा।

'सोचता क्या, सोचना तो जीवनभर है।' यह कहकर वह असावधानीसे पानीसे खेलने लगा।

पागल बाबा मुझे अलग ले गये और बोले—'देखा न, निकल गया दीवाला ?'

'किसका बाबा ?'—मैंने पूछा।

'भगवान्‌के बैंकका। भगवान् हर प्राणीको प्राणशक्ति देते हैं, उसका सदुपयोग करनेके लिये और यह मूर्ख सूनी-सूनी आँखोंसे, निरर्थक दृष्टिसे देखकर ही सारी शक्ति खर्च किये दे रहा है।'

मैं कुछ पूछनेवाला ही था कि बाबा फिर बोले—'क्या जीवन इसीलिये मिलता है ? यह समझ रहा है कि मैं 'विश्राम' कर रहा हूँ, शक्ति मिलेगी; किंतु 'विश्राम' करके यह मूर्ख फिर जड जगत्‌में प्रवृत्त होगा, फिर सुखके प्रलोभनमें फँसेगा। फिर दुःखोंके भयसे भागा-भागा फिरेगा। फिर अनित्य वस्तुओंसे सम्बन्ध जोड़ेगा और उनपर विश्वास करेगा। तरह-तरहकी कामनाएँ करेगा और व्यर्थके चिन्तनमें फँसेगा। यह 'विश्राम' थोड़े ही है। 'विश्राम'का अर्थ होता है—कामनाओंका अभाव, संकल्प-विकल्पकी पूर्ति-अपूर्तिके प्रभावसे परे, सूक्ष्म शक्तियोंसे सम्पन्न तन-मन, नयी शक्ति, नया उत्साह····।'

अपनी बात पूरी किये बिना मुझे गङ्गा-तटपर ही छोड़कर पागल बाबा फिर उछलते-कूदते, चिल्लाते चले गये—'निकल गया दीवाला, निकल गया दीवाला !'

(२)

एक दिन पागल बाबा एक स्कूलकी कक्षामें घुस गये। अध्यापक उन्हें जानते थे। उन्होंने पढ़ाना बंद कर दिया और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। बाबा बोले—'आज मैं पढ़ाऊँगा।'

बाबाने श्यामपट्टपर लिख दिया—'शा मा बो।' 'बूझो मेरी पहेली।'—बाबा बोले। कोई कुछ समझ नहीं पाया।

'बूझो तो बूझो, नहीं तो हार मानो'—बाबा बोले। अध्यापकने विनम्रतासे हाथ जोड़ लिये।

'अच्छा तो आज तुम सब मेरे विद्यार्थी बनो । आज मैं पढ़ाऊँगा ।'—यह कहकर बाबाने 'शा' के नीचे लिख दिया—'शारीरिक विश्राम, वर्तमान कार्योंको करनेसे ।' 'मा' के नीचे लिखा—'मानसिक विश्राम, अनावश्यक संकल्पोंके त्यागसे और 'बौ' के नीचे लिखा 'बौद्धिक विश्राम, संकल्पपूर्तिके सुख-त्यागसे' ।

बाबा अध्यापकसे बोले—'कुछ समझे ?'

फिर अध्यापकके उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही वे बोल उठे—'देखो, तुम्हारा काम है—पढ़ाना । खूब मन लगाकर पढ़ाओ । न तो इन विद्यार्थियोंपर कोई अधिकार मानो और न इनका कोई अधिकार छीनो । यही शारीरिक विश्राम है । और मानसिक विश्राम ? इसका अर्थ है कि संकल्प-विकल्प मत करो, जो कुछ सामने है उसीको ठीकसे करो । बौद्धिक विश्रामका अर्थ है—कोई इच्छा पूरी हो जाय तो हर्षके मारे फूले-फूले मत फिरो ।' यह कहकर बाबा कक्षासे बाहर निकल आये और 'शा मा बौ, शा मा बौ'को लयसे गाते हुए भागते चले गये ।

(३)

उस दिन पागल बाबा एक कागजपर पेंसिलसे कुछ रेखाएँ खींच रहे थे । मैं चुपकेसे जाकर खड़ा हो गया । उन्होंने मेरी ओर देखा और फिर तन्मय होकर कुछ बनाने लगे । उनकी खींची हुई रेखाओंको देखकर ऐसा लग रहा था कि कुछ फूल बने हैं । वे बिना सिर ऊपर उठाये बोले—'समझे कुछ ?'

'नहीं बाबा, आपकी बातें भला मैं कैसे समझ सकूँगा ?'—मैंने कहा। बाबा बोले—'संसार फुलवारी-की तरह है पागलचन्द !' 'फुलवारीकी तरह है तो ?'

'तो यह'—कहकर बाबाने बोरीका एक चित्र बनाया और उसपर लिख दिया 'खाद' । फिर बोले—'क्या समझे ?' 'आप ही बताइये ।' मैंने कहा ।

'इसका अभिप्राय यह है कि संसारकी फुलवारीमें अपने शरीरको खाद बना दो । यही सेवा है । और किस काम आयेगा शरीर ? शरीरका अभिमान करनेसे भोग-वासनाएँ ही तो बढ़ेंगी या और कुछ ? खूब कर लो सेवा इस संसारकी ! हाँ, इतना ध्यान रखना कि बदलेमें कुछ चाहो मत । सेवाका कुछ अभिमान मत करो और न सेवाके प्रति राग ही रखो ।' यह कहकर बाबाने वह कागज मुझे पकड़ा दिया और कहा—'इसे रख लो । यह सेवाका पाठ है । इसे प्रतिदिन पढ़ा करो ।'

(४)

पागल बाबा कुछ दिनोंसे एक गुफामें रह रहे थे । गुफाकी दीवारपर किसीने तारकोलसे लिख दिया था—'पागल बाबाकी कुटिया ।' एक दिन देखा कि बाबा मिट्टीके तेलमें भीगे कपड़ेसे उस लिखे हुएको बड़े परिश्रमसे मिटा रहे हैं, उनके माथेसे पसीनेकी बूँदें टपक रहीं थीं। मैंने पूछा—'अरे यह क्या कर रहे हैं आप ?'

बहुत गम्भीर होकर बाबा बोले—'गम्भीर विषय सुलझा पाओगे ? वकालत तो पढ़े हो न ?'

'कुछ बताइये तो'—मैंने कहा ।

'अच्छा पहले यह बताओ कि किसी दूसरेकी जायदादपर अधिकार करना कौन-सी धारामें आता है ?'

किंतु उत्तर देनेके बदले मैंने मुस्करा दिया ।

बाबा बोले—'बातकी गम्भीरताको समझो । कोई ऐसा-वैसा विषय नहीं है। भगवान्की जायदादपर अनुचित अधिकार हो गया है भाई ! यह देखो, कुटिया भगवान्की सम्पत्ति है । अब इस चोर बाबाने उसपर अधिकार करके नामकी मोहर भी लगा दी है । अरे भाई, मेरी सहायता करो न ! कहीं मुकदमा चल गया तो ?'

यह कहकर बाबाने कपड़ा मुझे पकड़ा दिया । इधर मैं उन अक्षरोंको मिटानेपर जुटा और उधर

बाबाने डंडा उठाया और उन अक्षरोंपर बरसाने लगे—'चोरी और सीना-जोरी। दूसरेकी सम्पत्तिपर अधिकार जमाओगे और खुले आम कहोगे कि यह पागल बाबाकी है।' तभी मुझे हँसी आ गयी। बाबाने डंडा मेरी ओर ताना। अधमिटे अक्षरोंको जैसा-तैसा छोड़कर मैं भागा।

(५)

उस दिन पागल बाबा अपनी गुफाके चारों ओर नाच-कूद रहे थे। बीच-बीचमें हँसते जाते थे। मैंने पूछा—'क्या बात हो गयी बाबा ?'

'अरे आओ भाई।' हँसकर कहते हुए बाबाने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे अपनी गुफाकी दीवालके पास ले गये। वहाँ किसीने लिख दिया था—'ईश्वरको माननेवाला मूर्ख है।'

'पढ़ो इसे, जोर-जोरसे पढ़ो।' पागल बाबा हँसते ही जा रहे थे। 'हरे, हरे, किसने लिखा यह ?'

मेरी बातका उत्तर दिये बिना वे मुझे गुफाके दूसरे कोनेपर ले गये। वहाँ किसीने लिखा था—'भगवान्‌का नहीं, अपना भरोसा रखो।'

बाबा हँसते ही जा रहे थे। फिर वे मुझे दूसरी दीवालके पास ले गये। उसपर लिखा था—'धर्म अफीमका नशा है।'

बाबा बोले—'देखा तुमने, कितना परिश्रम किया है, किसी दयालुने। यह सब लिखकर उसने प्रभुकी विस्मृतिको समाप्त ही कर दिया है। जब-जब इन्हें पढ़ता हूँ, तब-तब भूला हुआ प्यारा याद आ जाता है। मुझे मेरे प्यारेकी याद दिलानेवाला यह अनीश्वरवादी किस आस्तिकसे कम है ! वाह रे प्रभु ! कैसी तेरी मौज ! कभी तू आस्तिकजनों, संतों-महात्माओंसे अपनी स्मृति जाग्रत् करवाता है तो कभी इन अनीश्वरवादियोंसे।'

फिर बाबा मुझसे कहने लगे—'अरे, कहींसे ढूँढ़कर ले आ उस प्यारेको, जिसने मुझे मेरे प्यारेकी याद दिलायी है। वह मिल जाय तो उसका हाथ चूम लूँ। जा न।'

(६)

एक दिन पागल बाबाका एक अद्भुत रूप देखनेको मिला—सिरपर पुस्तकोंका गट्ठर, बगलमें अखबारों-पत्रिकाओंका बंडल, एक हाथमें सितार, कंधेमें लटकी हुई ढोलक और ढोलकमें बँधे मंजीरे और घुँघुरू। मैंने पूछा—'बाबा ! यह सब क्या लादे फिर रहे हैं ?'

वे बड़े गम्भीर स्वरमें बोले—'कुछ नहीं, थकान मिटानेका सामान लिये जा रहा हूँ।' 'क्या अभिप्राय ?' मैंने साश्चर्य पूछा। 'यही कि जीवनके रास्तेपर चलते-चलते थकनेवाले राहियोंके लिये विश्राम करनेका सामान बटोर लिया है।' 'नहीं समझ पाया आपकी पहेली।' मैंने कहा। पागल बाबा जोरसे हँस पड़े। सिरका गट्ठर गिरते-गिरते बचा। बोले—'बात यह है कि अपनी गुफापर एक थका राही आया है। उसीके आरामके लिये यह सामान लिये जा रहा हूँ।'

'ढोलक-मंजीरा-सितारसे आराम !' मैंने पूछा।

"हाँ भाई ! विश्राम करनेका यह कलियुगी उपाय है। वे महाशय मेरे पुराने मित्र हैं। जीवनकी दौड़में थक गये तो मेरे पास आये। कहने लगे—'बुढ़ापेमें तुम्हारे पास रहकर विश्राम करूँगा। जीवनमें सब कुछ कर लिया है, अब कुछ नहीं करना है।' थोड़ी देरमें बोले—'मुझे सितार बजानेका शौक है, कभी-कभी ढोलक भी बजाता हूँ। इनका प्रबन्ध कर दो, समय सरलतासे कट जायगा।' फिर पुस्तकोंकी एक सूची दी। इन्हें भी लानेको कहा। मैंने सोचा—'कोई कसर क्यों रह जाय, इसलिये अखबार-पत्रिकाएँ भी उठा लाया, बेचारे थके हैं, विश्राम करनेके लिये कुछ चाहिये न।'"

बाबा सम्भवतः समझ गये कि मैं उनका व्यंग ठीकसे समझ नहीं पाया, अतः बोले—'लोग जब बुड्ढे हो जाते हैं, तब सोचते हैं कि अब आराम कर लें; किंतु आराम पाना चाहते हैं शौकोंको पूरा करके। विश्राममें शौक नहीं पूरे किये जाते भाई! विश्राममें तो संकल्प-विकल्पों, राग-सम्बन्धों और कामनाओंका बिल्कुल त्याग कर दिया जाता है; किंतु कलियुगी बूढ़े लोग बुढ़ापेमें न करने योग्य काम करके अपनेको और भी थका लेते हैं। अच्छा चलूँ अब, उनकी थकान मिटाऊँ।' पागल बाबा सामान लादे हुए अपनी गुफाकी ओर बढ़ गये।

(७)

उस दिन पागल बाबा अपनी गुफामें सामने एक कागज रखे हुए अपनी उँगलियोंपर कुछ गिन रहे थे। मुझे देखा तो बोले—'आओ-आओ, मुझे किसी पढ़े-लिखे आदमीकी आवश्यकता थी। जरा हिसाब-किताब करना है।'

मैंने झुककर कागजमें पढ़नेकी चेष्टा की। उसमें तारीखवार दो तरहके चिह्न बने हुए थे—एक चिह्न गुणा (×) का और दूसरा शून्य (०)का था।

बाबा बोले—'यह मेरा एक महीनेका हिसाब-किताब है। मेरी सहायता करो भाई! देखो, तुम गुणाके चिह्न गिन डालो। तबतक मैं शून्यके चिह्न गिनता हूँ।'

'किंतु यह सब क्या है?'—मैंने पूछा।

'बतलाऊँगा, बतलाऊँगा। तुम पहले गिनो तो।'

मैंने गिना। गुणाके चिह्नोंका योग पचास निकला। मैंने बाबाको बतलाया तो बोले—'शून्यके चिह्नका जोड़ है इक्यावन। वाह, खूब मजेदार बात है।' 'कैसी मजेदार बात?' मैंने पूछा।

बाबा बोले—'एक दिन तुमने कहा था कि लोग तुम्हें गाली देते हैं तो तुम कुछ नहीं कहते। मैंने कहा था कि लोग मेरे पैर भी तो छूते हैं। उसी रातको मैंने सोचा कि अच्छा, मैं हिसाब लगाऊँगा कि कितनी बार मेरा अपमान होता है और कितनी बार सम्मान? गुणाका चिह्न अपमानका चिह्न है और शून्य मान-सम्मानका चिह्न। यह एक महीनेका लेखा-जोखा है। देखो, दोनों लगभग बराबर निकले अर्थात् पचास बार मेरा अपमान हुआ और इक्यावन बार मेरा सम्मान। यह तो बिल्कुल ठीक बात हुई। ठीक हुई न?'

'मैं आपका ठीक-गलत कुछ भी नहीं समझा।'

'अरे भाई! अभिप्राय बिलकुल स्पष्ट है। न कोई मेरा मान करता है और न कोई अपमान। यदि तुम पहले मेरे पैर छुओ और फिर मारो तो मैं क्या सोचूँ—तुमने मेरा सम्मान किया या अपमान? सम्भवतः न सम्मान किया और न अपमान। सम्मान करना होता तो थप्पड़ क्यों मारते? और अपमान करनेका विचार होता तो पैर क्यों छूते? वही समाज जो इक्यावन बार सम्मान करता है, वही पचास बार मेरा अपमान करता है। अब मेरे लिये न तो समाजसे मिलनेवाले सम्मानका कोई महत्त्व है और न अपमानका। देखो, दोनों एक दूसरेको संतुलित कर रहे हैं। पता है तुम्हें, एक दिन काश्मीरकी 'लल्लयोगिनी'ने इसी तरहका हिसाब लगाया था। उसने एक कपड़ेमें जितनी बार मान-सम्मान मिला, उतनी गाँठें लगायीं। दूसरे कपड़ेमें अपमान मिलनेपर गाँठें लगायीं। बादमें उन गाँठोंको गिना तो बराबर निकलीं। वाह, क्या बढ़िया बात है।'

एकाएक बाबा उठकर गुफाके बाहर निकल गये और गाने लगे—'कौन करे मेरा अपमान? कौन करे मेरा सम्मान? दोनों एक समान।'

दूसरे दिन पागल बाबा मिले तो गम्भीर होकर बोले—'मान-अपमानकी मार सूक्ष्म-शरीरतक होती है। इससे ऊपर उठ जाओ तो क्या मान और क्या अपमान?'

पढ़ो, समझो और करो

(१)

समदृष्टि

मानव-जीवनमें समता और समदृष्टिके विषयपर हम चर्चा कर रहे थे। वहीं हमारे दो भूतपूर्व विद्यार्थी भी आकर बैठ गये थे। उन्होंने सत्य और स्वयं देखी हुई घटना वहाँ इस प्रकार बतायी—

थोड़े समय पूर्वकी यह घटना है। मेरे घरके समीप मार्गमें मेरी भानजी खेल रही थी। अचानक एक मोटर साइकिलवालेका झटका लगनेसे वह दूर जाकर गिरी। हम दौड़कर बाहर आये तबतक मोटरसाइकिल चली गयी थी। हमने उसका पीछा किया, वह उस गाँवमें एक परिवारमें मेहमान था। हमने वहाँ जाकर कहा—'ध्यान रखना चाहिये, गाँवमें धीरे साइकिल चलानी चाहिये।' आदि-आदि। मोटरसाइकिल चलानेवाला व्यक्ति कुछ बोले उससे पूर्व ही उसपर पीछे बैठे उसके साथीने कहा—'भाई! आप बैठिये, आपकी पुत्रीको चोट अवश्य आयी होगी, कारण कि वह दौड़कर आ रही थी। मैंने देख लिया और हाथका झटका देकर उसे ठेला, जिससे वह गिर गयी; परंतु उसे बचानेमें मेरा पैर एक पत्थरसे जा टकराया और देखिये कितनी अधिक चोट आयी है।' हमने देखा, सचमुच बहुत चोट आयी थी।

वे सज्जन जैसे अध्यात्ममें गहरे उतर गये हों, उस प्रकार गम्भीर स्वरमें बातको आगे बढ़ाते हुए बोले—"ऐसी घटनाओंकी सम्भावना पहलेसे किसीको थोड़े ही होती है। मैं जिस गाँवमें रहता हूँ, वह अमरेली-भावनगर रोडपर है। मेरा घर भी रोडके समीप ही है। एक दिन मैं अपने कार्यालयमें बैठा था कि एक ट्रक-ड्राइवर भागता-भागता मेरे कार्यालयमें घुस गया और मैं कुछ पूछूँ उससे पहले ही वह बोला—'बापू! रोडपर मुझसे दुर्घटना हो गयी है, दस-बारह वर्षका एक लड़का ट्रकके नीचे आकर मर गया है।" उसकी बात सुनकर मैंने कहा—'भयभीत न हो, जो होना था, वह हो गया। अब तुझसे कोई कुछ नहीं कहेगा।' परंतु वह मनुष्योंसे भयभीत होकर मेरी शरणमें आया था। पूरे गाँवमें हम प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। गाँवके लोग थोड़ा डरते भी थे। मैंने ड्राइवरके लिये पानी मँगाया।

"पाँच-सात मिनट हुए होंगे तभी एक सज्जन दौड़ते-दौड़ते मेरे कार्यालयमें आये और बोले—'बापजी! आपका लड़का ट्रक-दुर्घटनामें मर गया है।' इतना कहकर वह चला गया। मैंने एक दृष्टि ड्राइवरपर डाली। उसका सम्पूर्ण शरीर काँप रहा था। सिंहकी गुफामें स्वयं ही फँस जाने-जैसी उसकी स्थिति हो गयी थी।

"थोड़ी देर मौन रहनेके पश्चात् मैंने कहा—'भाई! दोष तेरा नहीं है। दैवका विधान ही ऐसा था। यह तो दुर्घटना है, किसीने हत्या तो नहीं की है!'

"ड्राइवर दौड़कर मेरे पैरोंमें गिर गया और रोने लगा। उसे मेरे वचनोंपर विश्वास ही नहीं होता था। मैंने जैसे-तैसे उसे शान्त किया। कोई उसे कष्ट न दे, यह सोचकर मैंने एक आदमी उसके साथ कर दिया और अमरेलीतक सकुशल पहुँचा दिया।"

यह बात हम सब एकाग्रतापूर्वक सुन रहे थे—तभी वे हमसे बोले—'अब आपको मुझसे जो कहना हो वह कहिये।' हम उपालम्भका एक शब्द भी नहीं बोल सके। ऊपरसे उनकी उदारता, समता, समदृष्टि तथा **'क्षमा वीरस्य भूषणम्'** वाक्य उच्चारण करते हुए अपने घर वापस आये। 'अखण्ड-आनन्द

—रमा यादव

(२)

संत-वाणी

घटना सन् १९७०की है। मैं शहडोलसे रीवाँ आ रहा था। बसस्टैंड शहडोलमें खासी भीड़ थी।

खाली गाड़ियाँ बड़ी कठिनाईसे मिल रही थीं। मुझे रीवाँ पहुँचनेकी उतावली थी, अतः मैं कभी इस बसको झाँकता तो कभी उस बसको। इस प्रकार अशान्त-मन बस-स्टैण्डका चक्कर लगा रहा था कि एक बस आकर खड़ी हुई। यात्री बेतहासा उस जोर दौड़ पड़े। पर मेरे पहुँचते-पहुँचते वह बस भी पूरी तरह भर गयी। फिर भी गाड़ीका परिचालक किसीको मना नहीं कर रहा था। मैंने भी साहस जुटाया और गाड़ीमें घुसने लगा। मेरे एक पड़ोसी मित्र जो मेरे साथ थे (उन्हें रीवाँ नहीं जाना था, वे बस-स्टैंडतक आये थे), बोले—'मास्टर साहब! आप इस बससे न जाइये।' 'गाड़ी बड़ी कठिनाईसे मिली है, लगनका समय है, गाड़ी शीघ्र मिलनेकी सम्भावना नहीं।' मैंने उनकी सलाहपर विरोध प्रकट किया; किंतु वे फिर मुझे समझाते हुए जोर देकर बोले—'मेरी बात मानिये, यात्रा शुभ नहीं है।' शुभ शब्द मुझे खटक गया। मैंने उत्तर नहीं दिया। इसलिये कि उनकी बातोंका सदा स्वागत करता रहा हूँ। केवल मैं ही नहीं, अपने पास-पड़ोसके अधिकतर लोग। उसका कारण था, वास्तवमें वे संयम-नियमके बड़े पक्के, सत्यवादी और मितभाषी हैं। संकटके समय भी कभी उन्हें बातों या विचारोंको बदलते नहीं देखा गया। इतना ही नहीं, तन-मन-धनसे अपनी क्षमताके अनुसार वे दूसरोंका उपकार भी करनेके लिये उद्यत रहते हैं। इस निष्ठाके कारण उनका एक व्यक्तित्व ही बन गया है, जो दूसरोंपर सहज अधिकार कर लेता है और लोग उन्हें संतजी कहने लगे हैं।

संतजीकी सलाह मानकर यद्यपि मैंने बसमें बैठनेका विचार बदल दिया था पर मन पश्चात्तापकी नदीमें डूब रहा था कि बस कब मिलती है, कब नहीं। लगभग आधा घंटा बीता होगा कि एक खाली बस आकर खड़ी हो गयी। उसमें आरामसे जगह मिल गयी। संतजीसे मैंने हँसते हुए कहा—'अब आगे कहिये!' 'ठीक है, यात्रा शुभ है' संतजी बोले और दिल खोलकर हँसे। साथ ही मैं भी हँसा।

रीवाँ पहुँचनेमें लगभग चालीस किलोमीटर शेष रहा होगा कि अचानक बस रुक गयी। यात्री बेतहासा बससे उतरने लगे। मैंने सोचा, क्या बात है? खिड़कीसे झाँका, यह तो छुहिया पहाड़ है, और-और………… मुझसे अब बसमें बैठे नहीं रहा गया। उतर पड़ा! नीचे देखा! सड़कके नीचे ढालपर उलटी-पलटी एक बस पड़ी थी। मेरे होश उड़ गये। यह तो वही बस है, जिसपर चढ़नेसे संतजीने रोका था। कुछको चिरनिद्रामें सोये और कुछको चीखते देखकर लोगोंका हृदय विदीर्ण हो रहा था। मेरी आँखोंके सामने संतजीका सौम्य चेहरा घूम गया, उनकी वाणी कानोंमें गूँजने लगी। सोचा, वास्तवमें संत-वाणी ईश्वरकी वाणी होती है।

—श्यामराज पाण्डेय

(३)

विपति काल कर सतगुन नेहा

घटनाका क्रम तो तबसे प्रारम्भ होता है, जब हमारे पिताजी हम सब भाई-बहनोंको बहुत छोटी अवस्थामें छोड़कर परलोक सिधार गये और घरका पूरा भार हमारी पूजनीया माँके सिरपर ही आ पड़ा था। हमारे पास तीन एकड़ जमीन थी, परंतु खेती करनेवाला कोई नहीं था। हमारी माँ मजदूरोंसे खेती कराती थीं। वर्षमें जो कुछ प्राप्त होता उससे घरका खर्च कितनी कठिनाईसे कैसे चलता था, शब्दोंमें व्यक्त करना सम्भव नहीं है। आयका अन्य कोई साधन नहीं था। हम तीनों भाइयोंकी अवस्था इस योग्य नहीं थी कि खेतीके कार्यमें माँकी कुछ विशेष सहायता करते, फिर भी शक्तिके अनुसार करते ही थे। धीरे-धीरे काल व्यतीत हुआ और बड़े होनेपर हम सब भाई क्रमशः पढ़ने जाने लगे।

हमारे गाँवमें पाँचवीं कक्षातककी ही पाठशाला है। पाँचवीं कक्षा उत्तीर्ण करनेपर मेरे बड़े भाईको गाँवसे दो-तीन मील दूरीपर स्थित इंटर कालेजमें पढ़ने जाना पड़ा। तबतक वहाँके प्रधानाचार्य महोदयसे हमारा परिचय नहीं था। कालेजमें नाम लिखाते समय जब मेरे बड़े भाईने अपने नामके साथ पिताजीका नाम लिखाया तब प्रधानाचार्य महोदयने उनका कुशल-समाचार पूछा और पिताजीके साथ अपनी मित्रताका परिचय दिया। पिताजीके परलोक-गमनकी बात सुनकर उन्हें हार्दिक दुःख हुआ। इसके पश्चात् उन्होंने हमारी कितनी सहायता की, वर्णन करना सम्भव नहीं है। हम सभी भाइयोंने छठीं कक्षासे इंटरतककी शिक्षा उसी कालेजसे प्राप्त की। अध्ययन-कालमें हम सभी भाइयोंको उन्होंने पढ़ाईमें काम आनेवाली पुस्तकें कुछ कालेजसे और शेष अपने स्वयंके खर्चसे दी थीं तथा सबकी फीस भी माफ कर दी थी। इसके अतिरिक्त वे तन, मन, धनसे हमारी बराबर सहायता करते रहते थे। उनके समीप पड़नेपर हमें प्रतीत ही नहीं होता था कि हमारे पिता इस लोकमें नहीं हैं। इतना ही नहीं, वहाँकी पढ़ाई समाप्त होनेपर मेरे बड़े भाईको उन्होंने स्वयं प्रयत्न करके अच्छी नौकरी भी दिला दी। अब तो मैं भी बड़े भाईके पास दिल्लीमें ही नौकरी करने लगा हूँ और माँ तथा छोटे भाईको भी अपने समीप ही बुला लिया है। हमारा पूरा परिवार अब आनन्दमें है; परंतु हमें इस स्थितितक पहुँचानेका सभी श्रेय हमारे पिताजीके उन मित्र प्रधानाचार्यजीको ही है। अब भी उनके उपकार हम सबको जब-जब स्मरण आते हैं, हमारा मस्तक श्रद्धासे स्वतः उनके चरणोंमें झुक जाता है और रामचरितमानसकी यह चौपाई स्मरण हो आती है—

बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

—उमेशकुमार अग्निहोत्री

(४)

प्रत्यक्ष चमत्कार

दिनांक २४।११।८५को हमारे मकानकी दूसरी मंजिलकी खिड़कीसे, जो लगभग पंद्रह फीट ऊँचाईपर है, हमारा तीन वर्षका पौत्र खाटपर खेलता हुआ खाटके पासकी खिड़कीसे नीचे गिर गया। नीचे फर्शपर पत्थर लगे हुए हैं तथा पास ही ईंटोंकी लम्बी डोली बनी हुई है और उसके अंदर तुलसी, केले तथा छोटे-बड़े पौधे लगे हुए हैं। ऊपरसे बच्चेके गिरनेका धमाका हुआ। पास खड़ी बड़ी पुत्र-वधूने दौड़कर बच्चेको गोदमें उठा लिया। मैं भी कमरेसे दौड़कर तुरंत वहाँ पहुँचा। बच्चा स्वयं रो रहा था। उसके कहीं कोई चोट दृष्टिगोचर नहीं हुई, केवल नाकपर थोड़ी-सी खरोंच लगी थी। चूँकि बच्चा जिस समय गिरा, वह मुँहके बल गिरा और नीचे उसके हाथ टिके, फलस्वरूप बाहर कोई चोट नही दीख पड़ी।

बच्चेको तुरंत अस्पताल ले गये। वहाँ उसे डेढ़-दो घण्टे रखा। उस समयतक बच्चा रोता-चिल्लाता रहा। अस्पतालमें उसका परीक्षण करके पीनेको दवा दी गयी और सावधान किया गया कि बच्चेको यदि उल्टी हो तो तुरंत वापस ले आवें।

उधर बच्चेको अस्पताल ले गये, इधर मैंने प्रभुसे प्रार्थना की कि बच्चेकी रक्षा करना, इसके लिये 'सुदर्शन-कवच'का पाठ किया और रामचरितमानसके लंकाकाण्डकी चौपाई—'**राम कृपा करि चितवा सबहीं। भये बिगत श्रम बानर तबहीं॥**' का एक सौ आठ बार जप किया। कुछ ही समय पश्चात् बच्चेको घरपर ले आये। बच्चा स्वस्थ एवं प्रसन्न है। इतने ऊपरसे गिरनेके कारण कहीं भीतरी चोट न लगी हो, इस शङ्काका निवारण भी एक्सरेसे हो गया। यह है 'सुदर्शन-कवच'का प्रत्यक्ष प्रभाव और रामायणकी चौपाईका फल।

बोलो सच्चिदानन्दकी जय।

मनन करनेयोग्य

(१)

भक्तका स्वभाव

प्रह्लादने जब असुर-गुरुओंकी बात न मानकर हरिनामको न छोड़ा, तब उन्होंने क्रोधमें आकर अग्निशिखाके समान प्रज्वलित शरीरवाली कृत्याको उत्पन्न किया। उस अत्यन्त भयंकर राक्षसीने अपने पैरोंकी चोटसे पृथ्वीको कँपाते हुए वहाँ प्रकट होकर बड़े क्रोधसे प्रह्लादजीकी छातीमें त्रिशूलसे प्रहार किया, किंतु उस बालकके हृदयमें लगते ही वह झलझलाता हुआ त्रिशूल टुकड़े-टुकड़े होकर जमीनपर गिर पड़ा। जिस हृदयमें भगवान् श्रीहरि निरन्तर अक्षुण्णरूपसे विराजते हैं, उसमें लगनेसे वज्रके भी टूक-टूक हो जाते हैं फिर त्रिशूलकी तो बात ही क्या है?

पापी पुरोहितोंने निष्पाप भक्तपर कृत्याका प्रयोग किया था, बुरा करनेवालेका ही बुरा होता है, इसलिये कृत्याने उन पुरोहितोंको ही मार डाला। उन्हें मारकर वह स्वयं भी नष्ट हो गयी। अपने गुरुओंको कृत्याके द्वारा जलाये जाते देखकर महामति प्रह्लाद 'हे कृष्ण! रक्षा करो! हे अनन्त! इन्हें बचाओ'—ऐसा कहते हुए उनकी ओर दौड़े।

प्रह्लादजीने कहा—'हे सर्वव्यापी, विश्वरूप, विश्वस्रष्टा जनार्दन! इन ब्राह्मणोंकी इस मन्त्राग्निरूप दुःसह विपत्तिसे रक्षा करो। यदि मैं इस सत्यको मानता हूँ कि सर्वव्यापी जगद्गुरु भगवान् सभी प्राणियोंमें व्याप्त हैं तो इसके प्रभावसे ये पुरोहित जीवित हो जायँ। यदि मैं सर्वव्यापी और अक्षय भगवान्‌को अपनेसे वैर रखनेवालोंमें भी देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ। जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे जहर दिया, आगमें जलाया, बड़े-बड़े हाथियोंसे कुचलवाया और साँपोंसे डँसवाया, उन सबके प्रति यदि मेरे मनमें एक-सा मित्रभाव सदा रहा है और मेरी कभी पाप-बुद्धि नहीं हुई है तो इस सत्यके प्रभावसे ये पुरोहित जीवित हो जायँ।'

ऐसा कहकर प्रह्लादने उनका स्पर्श किया और स्पर्श होते ही वे मरे हुए पुरोहित जीवित होकर उठ बैठे और प्रह्लादका मुक्तकण्ठसे गुणगान करने लगे!

—विष्णुपुराण

(२)

प्रभुकी वस्तु

एक भक्तके एक ही पुत्र था और वह बड़ा ही सुन्दर, सुशील और धर्मात्मा था। एक दिन अकस्मात् वह मर गया। इसपर वह भक्त प्रसन्न हुआ और उसने भगवान्‌का उपकार माना। लोगोंने उसके इस विचित्र व्यवहारपर आश्चर्य प्रकट करते हुए उससे पूछा—'पागल! तुम्हारा इकलौता बेटा मर गया और तुम हँस रहे हो, इसका क्या कारण है?' उसने कहा— 'मालिकके बगीचेमें फूला हुआ बहुत सुन्दर पुष्प माली अपने मालिकको देकर प्रसन्न होता है या रोता है? मेरा तो कुछ है ही नहीं, सब कुछ प्रभुका ही है, कुछ समयके लिये उनकी एक वस्तु मेरी सँभालमें थी, इससे मेरा कर्त्तव्य था कि मैं उसकी जी-जानसे देख-रेख करूँ, अब समय पूरा होनेपर प्रभुने उसे वापस ले लिया, इससे मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है और मैं उनका उपकार इसलिये मानता हूँ कि मैंने उनकी वस्तुको न जाने कितनी बार अपनी मान लिया था—न जाने कितनी बार मेरे मनमें बेईमानी आयी थी। उसकी देख-रेखमें भी मुझसे बहुत-सी त्रुटियाँ हुई थीं, परंतु प्रभुने मेरी इन भूलोंकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर मुझे कोई उलाहना नहीं दिया। इतनी बड़ी कृपाके लिये मैं उनका उपकार मानता हूँ तो इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है?'

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। भारतसे बाहर अन्य देशोंमें तो यह स्थिति और भी भयानक है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरिके नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(बृहन्नारदीय पुराण)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवान्‌के नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्त्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्‌के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्‌के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्री-चैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा?'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नाम-स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नामसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मङ्गलमय भगवान्‌के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्‌की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण, जप, कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण'के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष २१ करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। आपको यह सूचित करते हुए हमें अपार हर्षका अनुभव हो रहा है कि इस वर्ष लोगोंने बड़े उत्साहसे भगवन्नाम-जप किया है तथा सवा इक्कीस करोड़ नाम-जपकी सूचनाएँ विभिन्न स्थानोंसे हमें प्राप्त हुई हैं; जिन्हें यहाँ प्रकाशित भी किया जा रहा है। इस वर्ष यह नाम-जप और अधिक उत्साहसे करना है। गत वर्ष 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें संकीर्तनाङ्क प्रकाशित हुआ था, जिसमें श्रीभगवन्नाम-जप-स्मरण-कीर्तनका विशेष महत्त्व तथा प्रक्रिया आदि प्रतिपादित हुई थी। अतः इस वर्ष २५ करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है।

निवेदन है कि पूर्ववत् आगामी कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा सं० २०४४ वि० तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्‌के नामके इतना प्रभावशाली होनेपर भी उसका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण'के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं—

१—जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनाङ्क १६—११—८६) रविवार रखी गयी है। इसके बाद भी किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा सं० २०४४ को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

२—सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

३—एक व्यक्तिको प्रतिदिन ऊपर निर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप तो अवश्य ही करना चाहिये; अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

४—संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीकी माला उत्तम होगी।

५—यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समयपर आसन-पर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

६—बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

६—संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं। उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रतिमन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती हैं, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जन जपकी संख्याकी सूचना ही भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि नहीं। सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखने चाहिये।

८—प्रथम सूचना तो मन्त्रजप आरम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

९—जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर और प्रभावक बनते हैं।

१०—सूचना संस्कृत, हिंदी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

११—सूचना भेजनेका पता—'नामजप-कार्यालय', द्वारा-कल्याण-सम्पादकीय-विभाग, गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस २७३००५ (गोरखपुर) है।

प्रार्थी—
राधेश्याम खेमका
सम्पादक—'कल्याण'

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(जपकी अवधि—कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०४२ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०४३ तक)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम् । स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे ॥

'मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते हैं और दूसरोंसे करवाते हैं ।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

—इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पूर्ववत् पर्याप्त संख्यामें इस वर्ष भी हुआ है । विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या २१, १७, ९३, २०० (इक्कीस करोड़, सतरह लाख, तिरानवे हजार, दो सौ)

(ख) नाम-संख्या ३,३८,८६,९१,२००) (तीन अरब, अड़तीस करोड़, छियासी लाख, इक्यानवे हजार दो सौ)

(ग) षोडश नाम-मन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है । (घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है । भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो । भारतके अतिरिक्त बाहर नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं ।

स्थानोंके नाम

अंकोला, अंधानेर, अकबरपुर, अकराबाद, अकलैरा, अकोला, अगौस, अजबपुरा, अजमेर, अजापुरा, अजीतमल, अतर्रा, अनूपगढ़, अबाड़ा, अमगवाँ, अमरावती, अमरेली, अमरोहा, अमलापुरम, अमृतपुर, अमृतसर, अम्बाला, अरकड़ा, अरनियाँ गौड़, अरनियाँ चोहान, अलवर, अलसीसर, अलिराजपुर, अलीगढ़, अल्मोड़ा, अल्लागंज, असजना, अहमदाबाद, अहिनौरा, अहेरी, आउबा, आकोट, आकोला, आगरा, आगलपुर, आजमगढ़, आबूपर्वत, आबूरोड, आमस, आरा, आरे, आसैर, इंगोहटा, इंदरी, इन्दौर, इछावरी, इटारसी, इटावा, इतवारा, इनरूवा बाजार, इमिलिया, इलाहाबाद, इस्माइलगंज, ईश्वरपुर साई, उज्जैन, उज्जैनपुर, उदयपुर, उधना, उपरहटी, उबौरा, उभरन, उमरन, उम्दा, उरई, उरकुरा, उरतुम, उँचौरी, एड़चोरो, एवाडी, ऐंचाया, ओत्तरां, औरंगाबाद, औरैया, कंजर, कटक, कटनी, कटरा, कटरापुख्ता, कटहरा, कठेला, कडवड, कदमकुवाँ, कदवाल, कनकपुर (करवाड़), कनलापुर, कनासिया, कनेक्षण, कन्नौद, कपरपुरा, कपासन, कपुरीसर, कमता, कम्पाउण्डर टोला, करंजालाड, करणसर, करनपुर, करलाबाजार, करही, कराड, करोद स्टेशन, कलकत्ता, कलमसरा, कलानौर, कल्याणबीघा, कवलपूरा-मठिया, कसराबद, कसरौर, कसवा, कांताबाजी, काटगढ़, काठमाण्डू (नेपाल), कादरगंज, कानपुर, कानपुरा, कामठी, कालरी, कारंजालाड, कारगलीबाजार, कासराली, कालगी, कालेनरपतनगर, कालन्द्री, कालीमाटी, कालोनी कुंवरा, काशीपुर, किछा, किताडीह, किशनगढ़, किशनापुर, कीरीबुरू, कुचापाण्डा, कुमार-धुबी, कुराली, कुरुक्षेत्र, कुल्लु, कुसमरा, कुसेड़ी, कृष्णपुर, कृष्णानगर, केकड़ी, केतार, केदमा, केपी, कै०घाट, कौंच, कोकलकचक, कोटद्वार, कोटफतही, कोटरा, कोटा,

कोठी, कोतमा, कोमाखान, कोयम्बटूर, खगड़ा, खगड़िया, खड़कीघाट, खजूरी-खण्डा, खमेरा, खरदौनकलाँ, खलीलाबाद, खांडामौदा, खांचरौद, खारागोड़ा-नयागाँव, खिलाव, खिलौनाकलाँ, खुनखुना, खुरहानमिलिक, खेतड़ी, खेतिया, खैजरा, खैरथल, खैरवाड़ा, खोड खोरपा, खोला-खोला (पनुवाँवौला), गंगापुर, गंगोह, गजपुरासिंह, गढ़चुरा, गढ़मोरा, गढ़ा, गड़ेरिहा (महराजगंज), गनेड़ी, गमालपुर, गया, गरीबीपुरवा, गाड़रवारा, गाजियाबाद, गारिया-खेड़ी, गिगालियाँ, गिरिजाथान, गिरीडीह, गुजरा (पाटन), गुट्टी, गुडला पहाड़ी, गुड़गाँवा, गुरदासपुर, गुराड़ियाजोगा, गुरुकुल-कांगड़ी, गुरुग्राम, गुलबर्गा, गुलरिहा, गुलाबपुरा, गुही, गोगामंडी, गोड़हिया नं० १, गोनौन, गोबडौली, गोरखपुर, गोराई, गोलाघाट, गोविन्दगढ़, गोसाईपुर, गौड़मण्डी, गौर, गौरीहरि, ग्वाडमिलकोट, ग्वालियर, घघोरा, घड़सानामण्डी, घटियावली, घरैहली, घोरमारा, चन्दनमाटी, चँदा, चंदौसी, चंद्रनगर, चंद्रहटी, चंडीगढ़, चक, चनबथ-अढांव, चमखड़ी, चमर्रा, चमाला, चरौदा-घरसीवा, चांगलांग, चांदपुरा, चामूण्डेरी, चिचगढ़, चितभवन, चिरगाँव, चिलकहर, चूरू, चेंडा, चैनपुर, चोपडा, चौक, चौबयाना-तालवेहट, चौबेके परसिया, छकनटोली, छतरगढ़, छतियाना, छतौनी, छपरा, छारसा, छिंदवाड़ा, जंगलोट, जगतपाल, जगदलपुर, जगधरी वर्कशाप, जबरासर, जबलपुर, जमालपुर, जमुनियाँ, जम्मू, जयगंज, जयपुर, जयरामपुर, जलगाँव, जहाँगीराबाद, जाजोता, जाएवल जांला, जालन्धर कैंट, जालना, जालोर, जालौन, जावर माइन्स, जियापोखर, जुकापाणी (अनारकली), जुब्बड़, जूनाडीह, जैतपुरा, जैतगिरी (बकावंड), जोधपुर, जोरावरडीह, ज्यूनियाँ, झाँझाँ, झाँसड़ी, झाँसी, झुन्झुनू, झूलाघाट, टपूकड़ा, टहरौली, टिहरी, टीकमगढ़, टेपू, ठाढ़ी, डाँवरा, डाला, डिगवाडीह बाजार, डिडवाड़ी, डिडनाना, डिडवाला, डीग, डीकैन, डुमरवार, डुमराँव, डूँगरपुर, डूमरपाती, डेढ़गाँव, डोईवाला, डोटोपार, डोबीवाली (वेस्ट), ढकनाल, ढकलगाँव, ढींगवाली जाटान, ढेकनाल, ढोसर, तन्सरामाल, तकलेच, तामसवाड़ी, तालीकोटी, ताहाचल (नेपाल), तिलापद गोविन्द, तिलापद-गोविना, तिवारीपुर, तीगाँव, तीलकथड़ा, तुमकूर, तेलहारा, तोंडापुर, तोखेरी गुर्ज, थाची, थाना, थिरौला, थेरला, दलसिंगपारा, दातारपुर, दादर, दादरी, दार्जिलिंग, दाहाल पान्चाली (नेपाल), दाहोर, दिदावली, दिलकुशा, दिल्ली, दुद्धी, दुर्ग, दुर्गापुर, दूरनपुर, देगुवा (सुपारी), देरगाँव, देवगढ़, देवगाँव, देवघाट, देवढी, देवरा, देवास, देहरादून, दोतरिया, दौरऊ, दौसा, धनगाँवा, धनपुरी, धनवाद, धनेरिया, धवही, धार, धुंधीकटरा, धूरी, धोबहा, धौलपुर, नंगल टाउन शिप, नंदनी, नगला कंचन, नठेड़ा, नयाकटला, नयागाँव, नयाचेण्डा, नयापुरवा, नयी दिल्ली, नरहन, नरगोड़ा, नरही, नल्लजेरल, नवरंगपुर, नवलपुर, नवापारा, नवापारा-तनवट, नागझरी, नागझिरी, नागपुर, नाडोल, नादेड़, नापासर, नायला, नारदीगंज, नारेहड़ा, नावला, निंबूरा, निजामपुर, निठार, निशाड, नीमच, नीलकमल, नूरमहल, नेवलगंज, नैमिषारण्य, नोहर, न्यादरपुर, न्हावी, पंचकुला, पंतनगर, पकरहट, पचोखरा, पचौरी, पटना, पटियाला, पतुलकी, पथरदेवा, पथराचट्टी, पथराड़, पथवारी पथैना, पदमा, पनवाड़, पमकनमंडी, परनवाँ, परबतपुर, परभणी, परवाणु, परसरामपुरा, पांडुकेश्वर (बद्रीनाथ), पादूकलाँ, पानापुर, पारसेन, पारसोला, पालम, पालवी, पाली-मारवाड़, पावलढेरा, पासीघाट, पिपरखेड़, पिपरौली, पिलकिछा, पिलखुवा, पीठीपट्टी, पीनना, पीपरी-गहरवार, पीलाधर, पुख, पुरी, पुरैना, पूना, पूरनपुर, पेशोक, पैंची, पोंड़ी, पोखरेड़ा, पोरबन्दर, पौड़ी, प्रीतमपुरी, फगवाड़ा, फतेहपुर, फत्तेहपुर, फटका, कोयलरी, फरसवानी, फर्रूखनगर, फागी, फुलवाड़े, फूलपुर, फूलपुर-रामा, फेरूसार, फैजाबाद, बंगा, बँदला, बकतरा, बगलकोट, बगासपुर, बघेरा, बटईकेला, बडोदरा, बड़गाँव, बड़वानी, बदली, बनवारी-बसन्त, बबेरू, बम्बई, बम्हौरी, बरगढ़, बर्नपुर, बरभुवा कचहरी, बरवा, बरही, बरींघाट (गुलाबगंज), बरूंधन, बरेली, बरौंधा, बरौनी थर्मल पावर स्टेशन, बलबहरा, बलरामपुर, बला, बसी पठाना, बस्ती, बहादुरपुर, बहराइच, बहरोड़, बहेराकलाँ-झरी, बाँकी, बांकीपुर, बाँगरोद, बाँदीकुई, बाँसजालिया, बाँसा तारखेड़ा, बाकल्दा, बागडोन्दी, बागोरी, बाडमेर, बाड़, बाड़वानी, बानखेड़, बानूछपरा, बाराँ, बारू, बालगढ़, बालेसर, बालोतरा, बावल, बाहेगाँव,

बिरझापुर, बिरौंधी, बिलासपुर, बिशाड़, बीकानेर, बीगोद, बीजापुर, बीदर, बीदाकी बस्ती, बीना, बीरहानपुर, बीरसिंहपुर-पाली, बीराराम, बीसापुर, बुंदेली, बुढ़ार, बुद्धिकोमना, बुरहानपुर, बुलडाना, बूँदी, बेंगलोर, बेनोडा, बेबीकामा, बेरबई, बेलूरमठ, बेबर, बेहटाकलाँ, बेहराकलाँ, बैकुण्ठपुर, बैतलपुर, बैतूल, बोकटा, बोकारो स्टील सिटी, बोराडी, बोरीगारका, बोरून्दा, ब्यारा, ब्यावर, भंजनगर, भँवरा, भगवानपुर, भगवानपुरति, भजीह, भडूस, भड़ोच, भद्रपुर (नेपाल), भरदागोड़, भरूच, भरूवा-सुमेरपुर, भवाली, भागदरी, भादरा, भायागढ़ी स्टेट, भाला, भासड़ी, भिलाई, भीमवरम, भुल्लाराई, भुवनेश्वर, भुवाबिछिया, भुसावल,भेड़वन, भैंसदेही, भैसाना, भोजपुर, भोपाल, भोपालगढ़, मँगटा, मंगरवाल, मंडल, मंडी, मंडी-गोविन्दगढ़, मऊघोपू, मखमेलपुर, मगरादर, मजीद, मझियाखार, मटिहानी, मडलौडा, मणिपुर, मथुरा, मद्रास, मदरेहटा, मघेपुर, मघेपुरा, मनफरा, मनिगाँव, मनीमाजरा, मलकापुर, मलकौली, मलया,, मलिनियाँदिरा, महवा, महँगी, महथौर, महनियाँवास, महमूदचक, महादेवपुरी, महाभारा, महूछावनी, महू, महेन्द्र, महेशपुरराज, महोबा, महोली, मांडवार, माचाड़ी, माछरा, माडल, माधवगढ़, माधवपुर, मालवाडा, मिरजानहाट, मीनाकलाँ, मीरजापुर, मीरपुर, मुंगो, मुगलसराय, मुजफ्फरपुर, मुड़ना, मुधोल, मुरली-चन्दवा, मुरादनगर, मुरादाबाद, मुल्लापुर, मुवाडा, मेरठ, मेरठकैण्ट, मेवासा धाम, मेहखास, मैगलगंज, मैनपुरी, मोकरम्बी, मोगराराम, मोछ, मोठालाठ, मोतीहारी, मोदीनगर, मोरवाड़ा, मोहनकोट, मोहनपुर, मोहना, मोहाना, मौजपुर, मौधिया, मौहार, यमकनमंडी, यमुनानगर, यवतमाल, यवदा, रंगमपेट, रजवारा, रतपुर कालोनी, रतलाम, रतवाखेड़ा, रनपुर, रमला, रसियारी, रसूलपुर, रहुवा-संग्राम, राँची, राउरकेला, ग्रा० खिराडा, राजगांगपुर, राजनांदगांव, राजपुर-खानपुर, राजपुरा, राजपिपरी, राजमार्गपुर, राजुराबाजार, रानीपुर, रानीखेत, रानीगंज-कैथोला, रानीटोल, रानीपार-जांजगीर, रामकृष्णपुरम्, रामगंजमंडी, रामगढ़ी, रामचन्द्रपुर, रामचौरा, रामनगर, रामधाम, रामपुरकुवँर, रामपुरा, रामभजनबाजार, रायथल, रायपुर, रायपुर (पाटन), रावतभाटा, रावतसर, राहा, रिवई, रीवाँ, रूरकी, रूपनगर, रेंचर, रेणापुर, रेहाली, रैपुरा दीक्षित, रोहतक, रौनियाँ, लखनऊ, लाखोरा, लत्ता, लसाड़ा, लश्कर, लश्करी, लाखनडिहरा, लाखेरी, लाडवा, लातूरू, लाम्बा-हरिसिंह, लालगढ़, लालसोट, लीलोढ़, लुधियाना, लुहारी, लेखराजनगर, लोईग, लोठियाना, लोहार्दा, वन्दना, वंहिगे, वजीरपुर, वर्धा, वाराणसी, विदुरकुटी, विन्नहाँ, विलहरी, विलाव, विलोका, विलोली, विलौनाकला, विष्णुपुर, वीखमपुर, वीछावर, शंकरपुरा, शनिश्चेर बाजार (नेपाल), शमाह, शहद, शहरना, शाहगढ़, शाहपुरा, शाहोपुर बरमा, शिकारपुर, शिवगंज, शुजालपुर, शेखपुर, शेरूपरा, शोलापुर, श्यामपुर, श्रीगंगानगर, श्रीरामपुर, श्रीविजयनगर, संगरिया, संडिला, संदणा, सगवाली, सगुनी, सतना, सतजोरी सपही, सपरून, सफिमानद, सरदारनगर, सरावगी, सराड़ा, सलूम्बर, सलोदरिया, सवदति, सहरना, सहसौल, साँगारखेड़ा कलाँ, सांगानेर, सांगोद, साँवलोदा-पुरोहितान, सागर, साधपुर, सापडूण्ढा, साबरमती, सारूढाब, सासनी, सिंगावाल, सिंगोली, सिंहभूम, सिकन्दरपुर, सिकराली, सिनावपुर, सिपाह-इब्राहिमाबाद, सिरजगाँव, सिरतोर, सिरौज, सिलीगुड़ी, सिवनी, सिहौल, सीकर, सीतामढ़ी, सीयल, सीरोही, सीसोटार, सुखानगर, सुन्दरनगर, सुगुर (के), सुजानपुर, सुवातीया, सूरजपुर, सूरत, सुलिया, सेबर, सेमरौर, सेमाटार, सोजित्रा, सोनई, सोनपुरा, सोफ्ता सौगाखेड़ा खुर्द, सौड़-खुर्द, सौरा, स्थाणा, हटलपुर, हजारीबाग, हनुमट्ट, हमीरगढ़, हरिद्वार, हरिहर, हरिहरपुर-बेदैलिया, हरैया, हसुवा, हस्वरा, हाथीदह, हिंगोली, हिंडौन-सिटी, हिली, हीनू, हीरामा, हैठीवाली, हैदरगढ़, हौशंगाबाद, ५६ ए०पी० ओ०, ९९ ए०पी०ओ० ।

'नाम-जप-विभाग' द्वारा--कल्याण--सम्पादकीय विभाग, गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीअन्नपूर्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

अस्य श्रीअन्नपूर्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रमहामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीअन्नपूर्णेत्यधिदेवता, स्वधा बीजम्, स्वाहा शक्तिः, ओं कीलकम्, मम सर्वाभीष्टप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ॐ अन्नपूर्णा शिवा देवी भीमा पुष्टिः सरस्वती । सर्वज्ञा पार्वती दुर्गा शर्वाणी शिववल्लभा ॥
वेदवेद्या महाविद्या विद्यादात्री विशारदा । कुमारी त्रिपुरा बाला लक्ष्मीश्श्रीर्भयहारिणी ॥
भवानी विष्णुजननी ब्रह्मादिजननी तथा । गणेशजननी शक्तिः कुमारजननी शुभा ॥
भोगप्रदा भगवती भक्ताभीष्टप्रदायिनी । भवरोगहरा भव्या शुभ्रा परममङ्गला ॥
भवानी चञ्चला गौरी चारुचन्द्रकलाधरा । विशालाक्षी विश्वमाता विश्ववन्द्या विलासिनी ॥
आर्या कल्याणनिलया रुद्राणी कमलासना । शुभप्रदा शुभावर्ता वृत्तपीनपयोधरा ॥
अम्बा संहारमथनी मृडानी सर्वमङ्गला । विष्णुसंसेविता सिद्धा ब्रह्माणी सुरसेविता ॥
परमानन्ददा शान्तिः परमानन्दरूपिणी । परमानन्दजननी परानन्दप्रदायिनी ॥
परोपकारनिरता परमा भक्तवत्सला । पूर्णचन्द्राभवदना पूर्णचन्द्रनिभांशुका ॥
शुभलक्षणसम्पन्ना शुभानन्दगुणार्णवा । शुभसौभाग्यनिलया शुभदा च रतिप्रिया ॥
चण्डिका चण्डमथनी चण्डदर्पनिवारिणी । मार्तण्डनयना साध्वी चन्द्राग्निनयना सती ॥
पुण्डरीकहरा पूर्णा पुण्यदा पुण्यरूपिणी । मायातीता श्रेष्ठमाया श्रेष्ठधर्माऽऽत्मवन्दिता ॥
असृष्टिः सङ्गरहिता सृष्टिहेतुः कपर्दिनी । वृषारूढा शूलहस्ता स्थितिसंहारकारिणी ॥
मन्दस्मिता स्कन्दमाता शुद्धचित्ता मुनिस्तुता । महाभगवती दक्षा दक्षाध्वरविनाशिनी ॥
सर्वार्थदात्री सावित्री सदाशिवकुटुम्बिनी । नित्यसुन्दरसर्वाङ्गी सच्चिदानन्दलक्षणा ॥
नाम्नामष्टोत्तरशतमम्बायाः पुण्यकारणम् । सर्वसौभाग्यसिद्ध्यर्थं जपनीयं प्रयत्नतः ॥
एतानि दिव्यनामानि श्रुत्वा ध्यात्वा निरन्तरम् । स्तुत्वा देवीं च सततं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

इति श्रीब्रह्मोत्तरखण्डे, आगमप्रख्यातिशिवरहस्ये अन्नपूर्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ॥

इस श्रीअन्नपूर्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रमहामन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, श्रीअन्नपूर्णा अधिदेवता, स्वधा बीज, स्वाहा शक्ति और ॐ कीलक है । इसका अपने अभीष्टसिद्धिके लिये जपमें विनियोग किया जाता है ।

ॐ **अन्नपूर्णा**-अन्नसे परिपूर्ण, **शिवा**-मङ्गलकारिणी, **देवी**-दैवबलसे सम्पन्न, **भीमा**-भयंकर रूपवाली, **पुष्टिः**-पुष्टिस्वरूपा, **सरस्वती**-सरस्वतीरूपा, **सर्वज्ञा**-सब कुछ जाननेवाली, **पार्वती**-पर्वतकी पुत्री, **दुर्गा**-दुर्गतिनाशिनी, **शर्वाणी**-शिव-पत्नी, **शिववल्लभा**-शिवकी प्रिया, **वेदवेद्या**-वेदोंद्वारा जाननेयोग्य, **महाविद्या**-महाविद्यास्वरूपा, **विद्यादात्री**-विद्या प्रदान करनेवाली, **विशारदा**-चतुरा, **कुमारी**-कुमार-अवस्थासम्पन्न, **त्रिपुरा**-त्रिपुरको विनाश करनेवाली शक्तिरूपा, **बाला**-सुन्दरी, **लक्ष्मीः**-लक्ष्मीस्वरूपा, **श्रीः**-सौन्दर्यशालिनी, **भयहारिणी**-भयको नष्ट करनेवाली, **भवानी**-शिव-पत्नी, **विष्णुजननी**-विष्णुकी माता, **ब्रह्मादिजननी**-ब्रह्मा आदिको उत्पन्न करनेवाली, **गणेशजननी**-गणेशकी माता, **शक्तिः**-शक्तिरूपा, **कुमारजननी**-स्कन्दको जन्म देनेवाली, **शुभा**-मङ्गलस्वरूपा, **भोगप्रदा**-भोग प्रदान करनेवाली, **भगवती**-ऐश्वर्यशालिनी, **भक्ताभीष्टप्रदायिनी**-भक्तोंको अभीष्ट प्रदान करनेवाली,

पंजीकृत-संख्या-जी० आर०-१३

भवरोगहरा-भवरूपी रोगको दूर करनेवाली, **भव्या**-सुन्दरी, **शुभ्रा**-उज्ज्वल वर्णसम्पन्ना, **परममङ्गला**-परम मङ्गलस्वरूपा, **भवानी**-भव-पत्नी, **चञ्चला**-चञ्चलस्वभाववाली, **गौरी**-गौरवर्णा अथवा शिशु-अवस्थासे युक्त, **चारुचन्द्रकलाधरा**-रुचिर चन्द्रकलाको धारण करनेवाली, **विशालाक्षी**-विशाल नेत्रोंवाली, **विश्वमाता**-विश्वकी माता, **विश्ववन्द्या**-विश्वद्वारा वन्दनीया, **विलासिनी**-विलास करनेवाली, **आर्या**-श्रेष्ठा, **कल्याणनिलया**-कल्याणकी आश्रयस्थान, **रुद्राणी**-रुद्र-पत्नी, **कमलासना**-कमलके आसनपर बैठनेवाली, **शुभप्रदा**-शुभ प्रदान करनेवाली, **शुभावर्ता**-शुभ आवर्तवाली, **वृत्तपीनपयोधरा**-गोल और स्थूल स्तनोंवाली, **अम्बा**-माता, **संसारमथनी**-संसारका मथन करनेवाली, **मृडानी**-शिव-पत्नी, **सर्वमङ्गला**-सर्वथा मङ्गलस्वरूपा, **विष्णुसंसेविता**-विष्णुद्वारा संसेवित, **सिद्धा**-सिद्धिसम्पन्ना, **ब्रह्माणी**-ब्रह्म-पत्नीस्वरूपा, **सुरसेविता**-देवताओंद्वारा सेवित, **परमानन्ददा**-परमानन्द प्रदान करनेवाली, **शान्तिः**-शान्तिस्वरूपा, **परमानन्दरूपिणी**-परमानन्द-सदृश रूपवाली, **परमानन्दजननी**-परमानन्दको उत्पन्न करनेवाली, **परानन्दप्रदायिनी**-परानन्द प्रदान करनेवाली, **परोपकारनिरता**-परोपकारमें निरत रहनेवाली, **परमा**-परमोत्कृष्टा, **भक्तवत्सला**-भक्तोंसे स्नेह करनेवाली, **पूर्णचन्द्राभवदना**-पूर्णिमाके चन्द्रमाकी कान्ति-सदृश मुखवाली, **पूर्णचन्द्रनिभांशुका**-पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान उज्ज्वल वस्त्र धारण करनेवाली, **शुभलक्षणसम्पन्ना**-शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, **शुभानन्दगुणार्णवा**-शुभ आनन्द एवं गुणकी सागर, **शुभसौभाग्यनिलया**-शुभ सौभाग्यकी निकेतन, **शुभदा**-मङ्गलदायिनी, **रतिप्रिया**-रतिकी प्रेमिका, **चण्डिका**-उग्र रूपवाली, **चण्डमथनी**-चण्डनामक असुरका संहार करनेवाली, **चण्डदर्पनिवारिणी**-चण्डके दर्पका निवारण करनेवाली, **मार्तण्डनयना**-सूर्य-तुल्य नेत्रोंवाली, **साध्वी**-पतिव्रता, **चन्द्राग्निनयना**-चन्द्रमा और अग्निको नेत्ररूपमें धारण करनेवाली, **सती**-पतिव्रतपरायणा, **पुण्डरीकहरा**-कमलकी शोभाको हरण करनेवाली, **पूर्णा**-पूर्णस्वरूपा, **पुण्यदा**-पुण्य प्रदान करनेवाली, **पुण्यरूपिणी**-पुण्यस्वरूपा, **मायातीता**-मायासे परे, **श्रेष्ठमाया**-श्रेष्ठ मायास्वरूपा, **श्रेष्ठधर्मा**-श्रेष्ठ धर्मसे सम्पन्न, **आत्मवन्दिता**-आत्मद्वारा वन्दित, **असृष्टिः**-सृष्टिसे परे, **सङ्गरहिता**-आसक्तिसे शून्य, **सृष्टिहेतुः**-सृष्टिकी कारणरूपा, **कपर्दिनी**-जटाधारिणी, **वृषारूढा**-नन्दीश्वरपर सवार होनेवाली, **शूलहस्ता**-हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाली, **स्थितिकारिणी**-पालन करनेवाली, **संहारकारिणी**-संहार करनेवाली, **मन्दस्मिता**-मन्द मुसकानवाली, **स्कन्दमाता**-स्कन्दकी माता, **शुद्धचित्ता**-शुद्ध चित्तवाली, **मुनिस्तुता**-मुनियोंद्वारा स्तुत, **महाभगवती**-महान् ऐश्वर्यशालिनी, **दक्षा**-निपुणा, **दक्षाध्वरविनाशिनी**-दक्ष-यज्ञका विध्वंस करनेवाली, **सर्वार्थदात्री**-समस्त पदार्थोंको देनेवाली, **सावित्री**-जीवोंको जन्म देनेवाली, **सदाशिवकुटुम्बिनी**-सदाशिवकी गृहिणी, **नित्यसुन्दरसर्वाङ्गी**-नित्य सुन्दर सर्वाङ्गोंवाली, **सच्चिदानन्दलक्षणा**-सच्चिदानन्दस्वरूपा। इस प्रकार अम्बाका यह अष्टोत्तरशतनाम पुण्यका कारण है। उसे समस्त सौभाग्यकी सिद्धिके लिये प्रयत्नपूर्वक जपना (पढ़ना) चाहिये। इन दिव्य नामोंको निरन्तर सुनकर एवं इनका ध्यानकर तथा सदा देवीकी स्तुति करके मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।